सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं अध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 54 : अंक : 09

दिसम्बर 2021

प्रकाशन तिथि : 01.12.2021

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 380/-

अमृतकण

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्
गुणातीतमरूपंच योहिस्यात्सगुरुः स्मृतः

गुकार गुणों से अतीत है, रुकार रूप से रहित है, जो गुणों से अतीत और रूप रहित है वह गुरु कहलाता है।

श्रुति स्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरुसेवकाः
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरेवेषधारिणः

श्रुति स्मृति को न जानकर भी जो केवल गुरु के सेवक हैं वे ही संन्यासी कहलाते हैं अन्य केवल संन्यासी के वेषधारी हैं यदि गुरु की सेवा नहीं करते हैं।

गुरोः कृपाप्रसादेन स्वात्मारामो हि लभ्यते
अनेन गुरुमार्गेण ह्यन्तर्ज्ञानं प्रवर्तते

गुरुदेव की कृपा के प्रसाद से अपनी आत्मा आनन्द स्वरूप को प्राप्त होती है। इस मार्ग से अन्तर्ज्ञान उदय होता है।

आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं परमात्मस्वरूपिणम्
स्थावरं जङ्गमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्

ब्रह्मा से छोटे पौधे पर्यन्त परमात्मा के स्वरूप हैं। जगन्मय स्थावर और जंगम परमात्मा को प्रणाम करता हूँ।

वंदेऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरुम्
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्

सच्चिदानन्द स्वरूप, भेद से अतीत, नित्य पूर्ण आकार रहित, गुण रहित स्वात्मा में स्थित जगद्गुरु की मैं वन्दना करता हूँ।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 दिसम्बर 2021 अंक : 09

अभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते

जन्मान्तरशताभ्यास्ता मिथ्या संसारवासना।
सा चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित्।।
तस्मात्सौम्य प्रयत्नेन पौरुषेण विवेकिना।
भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेव समाश्रय।।

अर्थात् – सैकड़ों जन्मों से झूंठी संसारी ममता का अभ्यास हो रहा है इसलिए बिना बहुत काल योगाभ्यास किये वह कभी नष्ट नहीं हो सकती है। हे सौम्य ! इस हेतु से यत्न पुरुषार्थ (सामर्थ्य) और विचार इन तीनों ही के आश्रय होकर योगबल से वासनाओं को दूर ही से त्याग दो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख-- *योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- *डॉ. विजय सिंह*	8
4.	कुलधर्मा: सनातना: - *पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय*	11
5.	लीला धारी की लीलाएँ...."तृतीय"- *श्री जगदीश राए बंसल*	14
6.	सिद्धयोग और साधन योग- *श्री मनमोहन कृष्ण त्रिखा*	19
7.	मन की तरंग- *श्रीमती सरिता भारद्वाज*	21
8.	सद्गुरुकृपा का प्रभाव- *श्री त्रियुगीनाथ त्रिपाठी*	23
9.	स्वास्थ्य प्राप्ति के सात्विक उपाय- *श्री शिवानन्द*	24
10.	चित्तनिरोध के उपाय- *श्री वैद्य रामधन शर्मा शास्त्री*	28
11.	साधना-काल में आने वाले विघ्न- *अनूप राम यादव*	33
12.	तपोधन महामुनि पतंजलि- *श्री गौतम*	36
13.	आत्मज्ञान और उसकी उपलब्धि- *श्री केशव उपाध्याय*	39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1000.00

हमारा विशेष लेख–

वासनायें और उनका समूलोन्मूलन

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्धयोग के योगानुरागी पाठकों को हम वासनाओं और उनके स्वरूप तथा प्रभाव को प्रायः समझाने का प्रयत्न करते रहे हैं। प्रस्तुत लेख में भी इन वासनाओं के समूलोन्मूलन का दिशा–बोध कर देना हम आवश्यक समझते हैं। बिना वासनाओं के समूलोन्मूलन के जन्म–मरण के चक्र से छूटकर मनुष्य मोक्ष का कभी भी भागी नहीं बन सकता है।

वासना और संस्कार दोनों एक दूसरे के आश्रित रहते हैं। वासना और संस्कारों का यह अटूट सम्बन्ध ही जीवन में मनुष्य के सुख–दुखमय भोग का कारण बना रहता है। वासनाओं से संस्कार और संस्कारों से वासनायें पुनर्जीवित होती रहती हैं। बिना किसी रुकावट या अन्तराय के यह व्यवस्था चलती रहती है। देश जाति और काल का भी कोई व्यवधान इसके बीच में खड़ा नहीं हो पाता। स्मृति पुराने से पुराने संस्कारों को प्रगट कर देने या उघाड़ देने में उसी प्रकार अपना सहयोग प्रदान कर देती है जैसे अग्नि को प्रदीप्त कर देने में घृत धारायें उसकी सहायक बन जाती हैं। किसी भी संस्कार का भुगतान–काल आने पर ज्योंही उनकी स्मृति आती है वासनायें जाग्रत होकर अपना काम करना आरम्भ कर देती हैं और वे जाग्रत तथा उदीप्त हुई वासनायें बलात् ही मनुष्य को दिग्भ्रमित कराकर उस कर्म रूपी वृक्ष के नीचे लेजाकर पटक देती हैं, जिसका सुख–दुख और जाति रूप फल उसे चखना अनिवार्य था। वासनायें इसी लिए अनादि बतलाई गई हैं। भगवान पतंजलि देव ने अपने योगदर्शन के चौथे पाद के सूत्र 10 में स्पष्टता से इसके स्वरूप की चर्चा करते हुए कहा है:–

तासाम अनादित्वम्, च आशिषः नित्वत्यात्।

यानी वे वासनायें अनादि हैं क्योंकि इच्छायें अनादि हैं। इच्छाओं का सूक्ष्म रूप ही वासनायें कहलाती हैं। जीवात्माका कर्ताभोक्तापन रूप आश्रय–यानी इनका आधार लेकर ही वासनायें जीवित रहती हैं। इसलिए इनका अभाव हो जाने पर वासनाओं का भी अभाव हो जाता है। जीवात्मा 'मैं देह हूँ'– मन में समायी इस अविद्या से जब संयुक्त हो जाता है तब वह कर्ता भोक्ता बन जाता है। जब अविद्या से पूरित मन रूपी आधार से आत्मा अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है तब वासना का आधार मन या चित्त हट जाता है। इसके हट जाने पर वासनायें अपने आप हट जाती हैं। चूँकि चित्त या मन ही वासनाओं का आश्रय बनता है इसलिए योगाभिलाषी साधकों को पहला पाठ योगश्चित्त वृत्ति निरोध: का गुरुदेव क्रियात्मक रूप से अपना लेने का परामर्श दिया करते हैं।

तन्मे मन: शिवसङ्कल्प मस्तु–

का सत्परामर्श भी इसी उद्देश्य से वेद भगवान द्वारा दिया है। जो चित्त प्रभुचिन्तन की रेखाओं से चित्रित रहेगा उससे वासनाओं की काली–काली रेखायें स्वत: ही तिरोहित हो जाती

हैं वैसे ही जैसे भगवान भास्कर की प्रभापूर्ण रश्मियों के फैल जाने से घोर अन्धकार पलायन कर जाता है।

वासनाओं का अस्तित्व ही मनुष्य के जाति आयु और फलभोग का कारण बना करता है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है– चित्त ही इन वासनाओं का आश्रय या आधार बनता है, यहीं से वासनायें उपयुक्त समय आने पर प्रकट होकर अपना कार्य किया करती हैं। जब इन वासनाओं का अभाव हो जाता है तभी साधक मोक्ष और कैवल्य पद प्राप्त कर लेने का अधिकारी बन जाता है। अतः जिन्हें जन्म–मरण के चक्र से छूटकर मोक्ष पद पा लेने की अभिलाषा हो उन्हें वासनाओं और वासनाओं के आश्रय या आधार को आवश्यक और अनिवार्य रूप से हटाना ही होगा।

चित्त को शास्त्रकारों ने धर्मादि निमित्त की अपेक्षा से दो प्रकार का बताया है– बाह्य और आध्यात्मिक। जो शरीर आदि बाह्य विषयों का और जो चित्त स्तुति, अभिवादनादिश्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि का अवलम्बन ग्रहण करता है वह आध्यात्मिक कहा जाता है। बाह्य चित्त बाह्य जगत में विकसित होता है, और श्रद्धा वीर्य, समाधि ईश्वर प्राणिधान आदि गुणों का अवलम्बन लेकर अन्तर्मुखता की ओर जो प्रवृत होता है वह अन्तर्जगत में विकास को प्राप्त होता रहता है। चित्तवृत्ति निरोध का अभिप्राय भी यही है कि चित्त को बाह्य इन्द्रिय विषयों से हटाकर उसे श्रद्धा और निष्ठा के साथ अन्तर्मुख बनाते हुए, उस महान सत्ता के असीम आनन्द–सागर में विलीन कर दिया जाय जहाँ कैवल्य के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं है।

वासनाओं और उनके क्रियाफल आश्रय आदि के समूलोन्मूलन का एक उपाय यह भी है कि साधक अपने सभी कर्मों को निष्कामता से या केवल प्रभु के लिए करते रहने का सहज स्वभाव बना ले। यह सहज स्वभाव अभ्यासयोग से प्राप्त किया जा सकता है। वासनाओं का मूल निष्काम भाव से सभी कर्म करते रहने से दग्ध होकर पुनः फल देने के अयोग्य हो जाता है। अतः प्रत्येक साधक की वासनाओं के उन्मूलन और क्लेशों के तन्वीकरण के लिए योगमार्ग का सतत् अवलम्बन करना चाहिए।

यहाँ एक शङ्का सहजतया यह उत्पन्न हो जाती है कि जब वासनायें अनादि हैं तब उनका उन्मूलन कैसे सम्भव हो सकता है? इस शङ्का का निवारण करते हुए व्यासदेव ने योगदर्शन के अपने भाष्य में कहा है:–

'धर्म से सुख, अधर्म से दुःख, सुख में राग और दुःख में द्वेष होता है। इन राग और द्वेष से प्रयत्न होता है। उस प्रयत्न से मन वाणी और शरीर से चेष्टा करता हुआ किसी पर अनुग्रह करता है और किसी की हानि। ऐसा करने से फिर धर्म–अधर्म, सुख–दुःख राग–द्वेष होते हैं। इस प्रकार यह छः अक्षरों वाला संसार–चक्र चलता है। इस प्रतिक्षण घूमते हुए चक्र को चलाने वाली अविद्या है। वही सब क्लेशों का मूल होने से अनन्त–अनादि का कारण है। जिसके आश्रय होकर जो उत्पन्न होता है वह उसका फल है तथा धर्म–अधर्म के सुख–दुःख भोग फल हैं। अधिकार संयुक्त चित्त वासनाओं का आश्रय है, क्योंकि जिस चित्त की फल भोगरूप सामर्थ्य समाप्त हो गयी है उसमें ये वासनायें निराश्रय होकर नहीं ठहर सकती। जिसके सम्मुख होने से जो वासना प्रगट होती है वही उसका आलम्बन है (वे रूप, रस आदि इन्द्रिय के विषय हैं) इस प्रकार यह सब वासनायें हेतु, फल आश्रय और आलम्बन से संगृहीत हैं, (इसलिए यद्यपि ये वासनायें अनादि और अनन्त हैं तथापि) इन हेतु आदि चारों के अभाव होने पर उनके आश्रय

रहने वाली वासनाओं का अभाव भी हो जाता है।'

भोजवृत्ति में भी व्यास भाष्य के कथन का समर्थन इस रूप में किया गया है:-

भोजवृत्ति-

'इन वासनाओं के अनन्त होने से उनका नाश कैसे होता है? इसके नाश का उपाय यह है कि-

' वासनाओं का समीपवर्ती (वर्तमान) ज्ञान कारण है। उस सुख-दु:खादि के ज्ञान के राग-द्वेषादि कारण हैं। उन राग-द्वेषादिकों का कारण अविद्या है। इस प्रकार वासनाओं का कारण साक्षात् अथवा परम्परा से अविद्या है। वासनाओं के फल शरीरादि और स्मृत्यादि हैं। वासनाओं का स्थान चित्त है। जो ज्ञान का विषय है, वही वासनाओं (संस्कारों का) विषय है। इससे उन हेत्वादिकों से अनेक वासनाओं का भी संग्रह व्यापन हो रहा है अर्थात् अनेक वासनायें व्याप्त हैं। जब वासनाओं के हेत्वादिकों का नाश हो जाय अर्थात् ज्ञान और योग से उन हेत्वादिकों को जले हुए बीज के बराबर कर दिया जाय तो जड़ के न रहने से वासनायें नहीं उगतीं अर्थात् शरीरादि को नहीं आरम्भ करतीं। इस प्रकार अनन्त वासनाओं का नाश हो जाता है।'

आओ मनुष्यता का हम जन्मदिन मनायें

श्री लाखन सिंह भदौरिया 'सौमित्र'

आओ मनुष्यता का हम जन्मदिन मनायें,
तज भेद-भाव, पावन, अन्तःकरण बनायें।।
घर-घर में प्यार बोयें, मन-मन के तार जोड़ें,
जीवन में शांति पायें, संजीवनी निचोड़ें।
जीवन की सौम्यता का उपवन सुमन-खिलायें,
आओ मनुष्यता का हम जन्मदिन मनायें।
क्या राम और लक्ष्मण केवल कहानियाँ हैं?
या जिन्दगी की उतरी ज्योतित जवानियाँ हैं?
अन्तस की भव्यता से फिर बन्धुता जगायें,
आओ मनुष्यता का हम जन्मदिन मनायें।
इंसान आज पागल, धूमिल सभी दिशायें,
हर ओर ध्वन्स दानव, फैला रहा भुजायें।
फिर साम-गान गाती उतरें किरण ऋचायें,
आओ मनुष्यता का हम जन्मदिन मनायें।

सम्पादकीय–

भगवान कपिल का माता को योगोपदेश

आचार्य (डा०) रामलाल शर्मा

एक–एक व्यक्ति का मिलित रूप समाज बनता है। हर व्यक्ति सुखी रहे परस्पर प्रेम व सद्भाव से जीवन बिताये इसके लिए स्वस्थ समाज की आवश्यकता पड़ती है। अराजकता में किसी प्रकार की उन्नति नही हो सकती। समुन्नत समाज का निर्माण तभी हो सकता है, जब समाज में सुसभ्य और श्रेष्ठ व्यक्ति रहते हों। हमारे समाज में यदि अनैतिक, अवांछनीय व अपराधी तत्व भरे पड़े हों तो समाज की उन्नति नहीं हो सकती।

हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों व आचार्यों ने अपनी प्रज्ञा विवेक से स्मृति व धर्मशास्त्रों का निर्माण करके समाज को सभ्य और सुसंस्कृत बनाया है। मानव के इहलौकिक और पारलौकिक दोनों पक्षों को सुखी बनाने के लिए सभी क्रियाओं में धार्मिकता को जोड़कर अभ्युदय और निःश्रेयस रूप परमफल की प्राप्ति का मार्ग खोल दिया है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय का विधान बनाया है। इसलिए समाज के हर व्यक्ति को आत्मोत्थान के साथ–साथ समाजोत्थान के विषय में भी सोचना चाहिए। किसी भी देश की सभ्यता व संस्कृति देश की प्राण होती है। वह जितनी सुदृढ धर्ममय व आध्यात्मिक होगी वहाँ के लोग उतने ही सुखी व समुन्नत होंगे। जो व्यक्ति धर्माचरण करता है उसके लिए **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** की उक्ति चरितार्थ रहती है। धर्मपालन ठीक प्रकार से होने पर ही व्यक्ति योगधर्म में प्रवेश पाने का अधिकारी बनता है। पूज्यपाद गुरुदेव भगवान् ने अपने हर गृहस्थ व विरक्त बच्चों को धर्ममय आचरण का उपदेश दिया है। गृहस्थ बच्चों को समझाते हुये वे कहा करते थे कि पति–पत्नि को परस्पर प्रेम से रहना चाहिए। कभी विवाद व झगड़ा नहीं करना चाहिए। उन्हें एक प्राण दो देही बनकर रहना चाहिये। जहाँ परिवार में पति–पत्नि में प्रेम रहता है वहाँ धन–धान्य व पैसा खूब रहता है। जहाँ नित्य ही क्लेश रहता है वहाँ गरीबी और बीमारियाँ रहती हैं। जिस घर में प्रेम–शान्ति रहती है वह कुल चमक उठता है। इस प्रकार एक–एक परिवार का सुधार हो जाये तो सारा समाज सुधर जायेगा और सभी योगमार्ग पर चलने लग जायेंगे। श्री गुरुदेव ने अपने बच्चों को सदा ही दुःखों से छुड़ाने का प्रयास किया है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने अपने संस्कारी बच्चों का कष्ट दूर करने के लिए अवनि मण्डल पर आना स्वीकार किया है। यद्यपि मर्त्यलोक योगियों के रहने की जगह नहीं है। अमृत रूपी महासागर में निमग्न रहने वाले महायोगियों के लिए मृत्युलोक हेय ही है। फिर भी संसार के जीवों की कल्याण कामना से समय–समय पर सद्गुरु रूप बदल कर आया करते हैं पूज्यपाद गुरुदेव के चरण–शरण में आकर हजारों व्यक्तियों का जीवन बदल गया। दुराचरण और व्यसन के कुमार्ग को त्यागकर उन्हें गुरुदेव ने सन्मार्ग का पथिक बनाया है। अपने शरण में आने वाले भक्त का शिवरूप गुरुदेव सदा ही कल्याण करते हैं। जीव अपने मिथ्याभिमान, अहंकार एवं अज्ञान के कारण

सद्गुरु के चरणों से **दूर रहा करता है। गुरुदेव का पृथ्वी पर आविर्भाव रहने पर भी संस्कारी पुण्यवान ही श्री चरणों से** जुड़ पाते हैं। एक महापुरुष जब पृथ्वी पर अवतरित होता है तो एक नये युग का सृजन हो जाता है। श्री गुरुदेव से शिक्षा–दीक्षा लेने वाले साधकों का भी एक संसार है और उसमें आने वाले व्यक्तियों का भाग्य बदल जाया करता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है– गुरुदेव तुम्हारे चरणों में भाग्यों को बदलते देखा है। वस्तुतः महापुरुष बड़े–बड़े भवनों का निर्माण नहीं करते, वे तो नये युग का निर्माण करते हैं। मानव को सही दिशा, उपदेश व **शक्ति** संचार के द्वारा उसमें नव चेतना का संचार कर उसे **'अमृतपद'** की ओर ले जाते हैं। " **सर्वे भवन्तु सुखिनः'** के भाव को हृदय में लिये मानव के उत्थान व कल्याण के लिये प्रकट होकर संसार में रहा करते हैं। योग वास्तव में विज्ञान के साथ–साथ कला भी है। यह जहाँ मनुष्य को अध्यात्म योग का ज्ञान देता है। वहीं साथ–साथ कला द्वारा मनुष्य के व्यवहारिक व सांसारिक जीवन को भी संवारता है। इस कारण से भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी **'योगः कर्मसु कौशलम्'** कहकर इसके उभय पक्ष को सामने रखकर मानव के सर्वांगीण विकास को उज्जवल बनाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। परम गुरुदेव आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज तथा सद्गुरु योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने मानव के कल्याण के लिये शरीर धारण कर विश्व को सब प्रकार से उपकृत किया है। उनके आदेशों व उपदेशों पर चलकर ही हम सब अपने लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही ़ और देर–सवेर प्राप्ति होती ही है, किन्तु मोक्ष तक की यात्रा सहज नहीं। इसकी प्राप्ति तक सभी को योगमय जीवन जी कर अनुकूल परिस्थितियाँ निर्माण करने की दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। यदि गुरुदेव की कृपा हो जाये तो शिष्य को लक्ष्य प्रापत करने के लिए क्षणभर का समय पर्याप्त होगा। अतएव साधक को पूर्ण निष्ठा और विश्वास के साथ सद्गुरुदेव के दिग्दर्शन को आत्मसात् करना चाहिये। तभी और केवल तभी उसका और उसके चारों ओर अवस्थित समाज का कल्याण सम्भव है।

सद्–शिक्षा

- *प्रतिदिन रसना की लालसा पूर्ति करते रहने वाले मंद बुद्धि मनुष्य को नानाक्लेश भोगने पड़ते हैं।*
- *शरीर और इन्द्रियाँ पुरुषार्थ के साधन हैं। उन्हें स्वयं स्वामी रहकर काम में लगाना चाहिए।*
- *यदि मिटाना है तो उल्लास के साथ अस्वाद का अभ्यास करना ही एक मात्र उपाय है।*

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

ग्यारहवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय में ऋषियों द्वारा यदुवंश को शाप देने की कथा वर्णित है। इसके पहले कि कथा में हम प्रवेश करें, कुछ बातें यहाँ समझने जैसी हैं। पिछले लेख में भूमा पुरुष अष्टभुजा युक्त आदि नारायण ने ब्राह्मण बालकों के निमित्त श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को अपने पास बुलाकर कहा तुम्हारा अवतार मेरी कला से एवं पृथ्वी से दुष्टों का संहार करने हेतु हुआ है। तुम दोनों नर एवं नारायण ऋषि हो। अब शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ। भूमा पुरुष ही पुरुषोत्तम हैं। श्रीमद्भागवत को भली प्रकार हृदयंगम करने हेतु महाभारत का भी अध्ययन प्रासंगिक है।

महाभारत समाप्त होने पर जब भगवान श्री कृष्ण द्वारिका लौटे, उनके साथ सखा अर्जुन भी द्वारिका आये हुये थे। एक दिन अर्जुन ने सखा श्रीकृष्ण से विनम्र प्रार्थना किया कि जो उपदेश आपने हमें कुरुक्षेत्र में युद्ध आरम्भ होने पर दिया था (गितोक्त उपदेश) उसे एक बार मुझे पुनः उपदेशित करने की कृपा करें। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– हे अर्जुन ! अब वैसा उपदेश मैं नहीं कर सकता क्योंकि उस समय मैं योगयुक्त होकर तुम्हारे मोह को नष्ट करने हेतु किया था। तू ने उसे भुलाकर ठीक नहीं किया। तदपश्चात् जो उपदेश भगवान ने अर्जुन को किया वह उत्तर गीता के नाम से महाभारत में वर्णित है। गीता में जहाँ श्रीकृष्ण ने क्षर ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म एवं पुरुषोत्तम् की बात किये हैं। वही उनका तात्विक स्वरूप है। जो अन्त में भूमा पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है।

श्रीसद्गुरु भगवान के सामने अवतारों की चर्चा कभी चला तो श्रीगुरुदेव भगवान ने कहा श्रीकृष्ण पूर्ण कलाकार हैं। श्री महाप्रभु जी कहते थे, श्रीकृष्ण सा योगी पृथ्वी पर न भूत में हुआ और न भविष्य में होगा। किसी जिज्ञासु ने पूछा हमारे महाप्रभुजी भी नहीं। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा महाप्रभुजी, राम, कृष्ण बनाने वाले हैं। भागवत् के दसम् स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में राम–कृष्ण बनाने वाले आदिनारायण भूमा पुरुष का वर्णन किया गया है। वे शुद्ध ब्रह्म हैं। वही हमारे श्री महाप्रभुजी हैं।

1989 में गंगा दशहरा ऋषिकेश में मनाया जा चुका था। एक सायंकाल श्री गुरुदेव भगवान अपने कुर्सी पर विराजमान थे। मुख मुद्रा गम्भीर थी। दो चार लोग जो बैठे हुये थे वे भी आश्रम के कार्य अथवा गंगा स्नान हेतु उठ–उठ कर जा चुके थे। श्री प्रभुजी के चरणों में थोड़ी दूर पर उस समय केवल मैं बैठा हुआ था। अचानक श्री गुरुदेव जी बोले– लल्ला ! विजय, योगी जो पूर्ण हैं, वे जब जीवोद्धार करने पृथ्वी पर आते हैं, तो ५ आने से पहले सारा कार्य–व्यवहार सुनिश्चित करके आते हैं। वे उसी प्रकार अपने संस्कारियों से व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि वे कब और कैसे भूलोक को त्यागेंगें यह भी वे पूर्व में ही निश्चित किये रहते हैं। मैं मौन हाथ जोड़कर बैठा रहा, कुछ इन बातों का मर्म नहीं समझ आ रहा था। श्रीगुरुदेव भगवान बोले कृष्ण

ने भी अपने तिरोधान हेतु व्याध को निमित्त बनाया और उसने विष लगे बाण से उन्हें बेधा था। यह कहकर प्रभु मौन हो गये। मुझ अज्ञानी को थोड़ा–थोड़ा मर्म 1990 जून में हुआ। एक वर्ष पहले कहे उन परमात्मा के वचन स्मृति में कौंध उठे।

खैर ! अब एकादस स्कंध में उन एक रस अव्यय भगवान श्रीकृष्ण के तिरोधान का वर्णन त्रीकालज्ञ श्री शुकदेव जी परीक्षित को कहते हैं। आइये हम अवगाहन करें।

अपने बाहुबल से सुरक्षित यदुवंशियों द्वारा पृथ्वी के भारस्वरूप राजाओं और उनकी सेनाओं को मरवाकर, भगवान ने पृथ्वी का भार हल्का कर दिया। परन्तु अभी यदुवंशी जो धीरे–धीरे मगरूर हो रहे थे, उन्हें आपस में ही लड़ाकर मैं अपने धाम को जाऊँगा, ऐसा संकल्प लिया। भगवान सत्यसंकल्प हैं। वे ऋषियों के शाप को निमित्त बनाकर, अपने वंश का संहार कर सबको समेट कर अपने धाम में ले गये।

एवं व्यवसितो राजन् सत्ससंकल्प ईश्वरः।
शाप व्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलम विभुः।।5।।

अ. 1 स्कं.11

परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा– भगवन् ! जिन यदुवंशियों का चित्त भगवान श्री कृष्ण में लगा रहता था। वे अपराधी कैसे बन गये ? उन्हें ऋषियों ने क्यों कर शाप दिया ?

श्री शुकदेव जी ने कहा– राजन ! अब भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका में यादवों का संहार करने हेतु कालरूप से ही निवास कर रहे थे।

पिण्डारक क्षेत्र में विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा अन्य ऋषि एवं देवर्षि नारद निवास कर रहे थे। एक दिन यदुवंश के कुछ उदण्ड कुमार वहाँ जाकर बनावटी नम्रता से प्रणाम करके प्रश्न किया। वे जामवन्ती नन्दन साम्ब को स्त्री वेश में सजाकर ले गये और बोले– ऋषियों यह सुन्दरी गर्भवती है। आप लोगों का ज्ञान अमोध, अबाध है। कृपया आप लोग बताइये, यह कन्या जनेगी या पुत्र?

भगवत् प्रेरणा से कुपित हो उन्होंने कहा– 'मूर्खो ! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी, जो तुम्हारे कुल का नाश करने वाला होगा। सचमुच एक लोहे का मूसल निकला। लड़के डर गये। ये सारी बात महाराज उग्रसेन को बताया उन्होंने बिना श्रीकृष्ण को परामर्श किये, उस मूसल को चूर्ण – चूर्ण कराकर बचे हुए छोटे–छोटे लौह टुकड़ों को समुद्र में प्रवाहित करा दिया। उनमें से एक लोहे के टुकड़े को मछली निगल गयी और चूरे बह–बह कर समुद्र के किनारे आ लगे। चूरे से ऐरक नाम की कठोर घाँस पैदा हुआ। जो मछली लोहे का टुकड़ा निगल गयी थी वह मछुओं द्वारा पकड़ी गयी। उसके पेट से निकले लोहे को जरा नामक व्याध ने पैना कर अपने बाण के अग्रभाग में लगा दिया। यह सब श्रीकृष्ण जी के संकल्प अनुसार ही हो रहा था।

इस स्कन्ध के दूसरे अध्याय में श्री नारद जी द्वारा वसुदेव जी को नौ योगीश्वरों द्वारा जनक को दिया उपदेश सुनाने का प्रकरण है।

एक दिन देवर्षि नारद वसुदेव जी के यहाँ आये। वसुदेव जी ने प्रणाम–पूजन के पश्चात् पूछा– भगवन् ! आप समस्त प्राणियों के कल्याण में रत रहते हैं। अब, आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं जन्म – मृत्युरूप भयावह संसार से अनायास पार हो जाऊँ।

श्री नारद जी ने कहा– यदुवंशशिरोमणे ! तुम्हारे प्रश्न के संबंध में एक प्राचीन इतिहास संतों द्वारा कहा गया है। वह है ऋषभ के पुत्र नौ योगीश्वरों और महात्मा विदेह (जनक) का शुभ संवाद।

महाप्रभु रामलाल की जै

श्री रामसजीवन सिंह

योगेश्वर आधार विश्व के, महिमा अगम न जाए बखानी।
पार न पावत देव थके सब, शेष शारदा मुनि अरु ज्ञानी।।
शक्तिपात करके कितनों को, सहज समाधी भी दे डाली।
मेरे सद् गुरुदेव आपकी, कहते रहते कथा निराली।।
पड़ा तिहारे द्वार मोहि पर दया-दृष्टि कीजै।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै।।

सिद्ध-गुफा की रज को खाकर, रोगी रोग मुक्त हो जाते।
श्रद्धा हुई आप पर जिसकी, उसके भव बंधन कट जाते।।
मंगामल की जान बचाई, तारी रामरती सी नारी।
सिद्धों के हो सिद्ध महाप्रभु, जग में ना कोई अनुहारी।।
जन्म अनेक पड़ा भव सागर अब उबार लीजै।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै।।

दीन युवक जयराम बचाया, तुरत भैरवी चक्र विनाशा।
सभी आसनों का निचोड़ रस, साधन 'जीवन तत्व' प्रकाशा।।
श्यामाचरण लाहड़ी जी को, पूर्व जन्म का ज्ञान कराया।
सुलभ सरलतम सिद्धयोग का, इस कलयुग में मार्ग दिखाया।।
कैसे कोटि जनम का मेरा महापाप सब छीजै।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै।।

पापी यदि आ गया शरण में, भर दीन्हीं उसको भी झोली।
योगी हुआ आपके द्वारा, योग सुधा जिसने भी पी ली।
अल्प बुद्धि मैं दीन-दु:खी हूँ, अवगुण में सर्वोत्तम नामी।
क्या माँगू कुछ सोच न पाता, आप स्वयं हैं अन्तर्यामी।।
जो सर्वोत्तम समझें मम हित, वही दान दी जै।
दानी महा उदार महाप्रभु रामलाल की जै।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

कुलधर्माः सनातनाः

पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

हमारा समाज शास्त्रीय मर्यादाओं से गठित समृद्ध और सम्पन्न समाज है। इसका गौरव मात्र भारतीयों को ही प्राप्त है। इसीलिए देवता भी भारतभूमि पर जन्म लेने हेतु तरसते हैं। हमारे पूर्वजों ने सनातन धर्म की कुछ शास्त्रीय मर्यादाएँ मनुष्यों के लिए बनायी थी। इससे व्यक्ति का जीवनयापन सरल एवं सुगम था। मनुष्य उस शास्त्रीय मर्यादाओं में रहकर योगमय स्वाभाविक धर्मनिष्ठ जीवन का निर्वाह करते हुए, समाज में रहता था। किन्तु हाय रे कलिकाल तुमने समय देखकर महाराज परीक्षित से हार कर अपने निवास का स्थान मांग ही लिया। तब तुम्हें भी स्थान देने के लिए राजा को स्थान चयन करने देना पड़ा। कलि वहीं से कुचक्र रचता रहा, तथा पाण्डव काल में आकर महाभारत रचा दिया। आज वर्तमान समय में तो घर–घर में महाभारत पहुँचा दिया। कलियुगे कलि प्रथम चरणे में आभास हो रहा है।

सद्गुरु के सच्चे साधक सावधान नारायण के साथी नर रूप में अर्जुन जो मनुष्य मात्र का प्रतिनिधित्व करता है। धर्म परायण जीवन भाइयों के साथ व्यतीत कर रहा था। अन्ततः उसे अपने ही भाइयों, सगे संबंधी, बाबा, दादा, मामा, साला, बहनोई आदि से युद्ध करना पड़ा। किन्तु नारायण के साथ रहते हुए धर्म की मर्यादा का सदैव पालन करता था। सनातन धर्म ही हमें सम्बल प्रदान करेगा। उसी से भुक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ होगा। इसलिए युद्ध के मैदान में युद्ध से विरत हो गया। भगवान उससे धर्मयुद्ध करवाना चाह रहे थे। क्योंकि युद्ध भी पूर्व निश्चित था। भगवान का कथन है– परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्। अर्जुन ने युद्ध से होने वाली विभिन्न विपरीत मर्यादाओं को जानकर ही कहा–

न काङ्क्षे विजय कृष्ण न च राज्य सुखानि च।

किनो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।

अर्थात् हे योगेश्वर कृष्ण मुझे न तो विजय की आकांक्षा न राज्य भोग, न तो अन्य किसी भी प्रकार के सुख की भी कामना है। हे गोविन्द मुझे राज्य से भी क्या प्रयोजन। जब अपने ही साथ नहीं रहने वाले हैं। ऐसे भोगों एवं जीवन से भी क्या लाभ है? गोविन्द आपने जहाँ मेरा रथ खड़ा किया है। मैं चारों ओर दृष्टि डाल रहा हूँ, तो सब अपने ही दिखाई दे रहे हैं। पुनः कहा–

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः,

मातुला श्वशुराः पौत्राः श्याला सम्बन्धिनस्तथा।

अर्थात् हे योगेश्वर मेरे सामने गुरुजन, चाचा, लड़के, दादा, मामा, श्वसुर, पोता, साला तथा और भी तमाम संबंधी युद्ध के लिए तैयार हैं।

यद्यपि धृष्टराष्ट्र के पुत्र आततायी बने हुए है, फिर भी इन्हें मारकर मुझे क्या मिलेगा। अर्जुन वस्तुत: सामाजिक संबंधों के मर्यादाओं के चक्कर में पड़ गया। इसलिए इस प्रकार के विचार बार–बार उठ रहे थे। किन्तु भगवान कृष्ण ही समझ रहे थे कि इनका मारा जाना ही आवश्यक है। अन्यथा समाज में अधर्म की स्थापना हो जायेगी। सामाजिक मर्यादाएं लुप्त हो जायेंगी। जिससे संसार की गति–मति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ेगा। धीरे–धीरे सनातन धर्म भी नष्ट हो जायेगा। अर्जुन बार–बार विभिन्न प्रकार के तर्क युद्ध न करने के पक्ष में दे रहा था। किन्तु रहस्य की बात तो कृष्णा ही जान रहे थे। अर्जुन पुन: प्रश्न करता–

यद्यप्ये ते न पश्यन्ति लोभोपहतचेत सः।

कुलक्षयकृतं दोषं मित्र द्रोहे च पातकम्।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम।

कुलक्षयंकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।

अर्जुन ने कहा कि यद्यपि ये लोभी और पापवृत्ति से भ्रष्टचित्त वाले होकर कुल के नाश के लिए तैयार हैं। अपने स्वजनों से ही विरोध करने में पाप को नहीं देख रहे हैं। परन्तु हे जनार्दन कुल के नाश होने के बाद जो दोष हम सबको दिखाई दे रहा है, उस पर हमें क्या विचार नहीं कर लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो जाए कि हमें बाद में पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़े। युद्ध के बाद सुख भी न प्राप्त हो। भीषण नरसंहार ही हमें दिखाई दे रहा है। धर्म भी नष्ट होगा। जब धर्म ही नहीं रहेगा तो हमारा जीवन कैसा होगा। पुन: प्रश्न किया–

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्मा सनातनाः।

धर्मेनष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभि भवत्युत।।

हे योगेश्वर कृष्ण हमारे जीवन जीने का एक सनातन धर्म है। जिसे कुल परम्परा से मानते हुए हमारे पूर्वज चले आ रहे हैं। हम इस कुल को नाश करके सनातन कुल धर्म को ही नष्ट करने पर तुले हुए हैं। यदि हमारा धर्म हमसे ही नष्ट हो जायेगा। तो सम्पूर्ण कुल में अत्यधिक पाप फैल जायेगा। हर व्यक्ति दुराचारी एवं व्यभिचारी हो जायेगा। हमारी कुल की पवित्र स्त्रियाँ भी दोष से युक्त हो जायेंगी जिससे समाज में वर्णशंकर की उत्पत्ति होगी। जो हम लोगों के लिए स्वाभाविक अभिशाप बन जायेगा। यह वर्णशंकर संतानें हमारे आपके तथा देवताओं के लिए पिण्डदान यज्ञादिकर्म करने की क्रिया को भी समाप्त कर देगें। जिससे समाज के साथ अन्य लोगों की मर्यादाएँ नष्ट होने लगेंगी। इसलिए हमें युद्ध को रोकना चाहिए। हम लोग धर्म के मानने वाले हैं। तो भी राज्य सुख के लोभ के कारण युद्ध करने को तैयार हैं।

मेरे साधक साथियों सावधान अर्जुन जो पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला श्रेष्ठ नर था। सब कुछ होते हुए भी उस समय वह उपहत स्वभाव वाला हो गया उसकी बुद्धि धर्म के विषय में मोह से युक्त हो गया। क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए यह निर्णय नहीं कर पा रहा था। इसलिए अर्जुन ने पूरी तरह से अपने को कृष्ण पर समर्पित होकर शिष्यभाव से युक्त होकर बोला– हे योगेश्वर हमें इस युद्ध के विषय में क्या करना चाहिए। यह बताने का कष्ट करें। पतंजलि दर्शन के एक सूत्र में साधक के नौ विक्षेप चित्त के बताये गये हैं। जो क्रमशः

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थित तत्त्व जो साधक को किसी साधन से विचलित करने वाले हैं। अर्जुन, संशय और अविरति की स्थिति में आ गया था। संशय का तात्पर्य अपनी शक्ति तथा कर्म के फल में संदेह होना तथा अविरति से तात्पर्य चित्त में वैराग्य का अभाव जो मोह के कारण होता है। किन्तु भगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश देकर उसके सारे संशयों को नष्ट कर दिया। यहाँ योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गुरु भाव में होकर उपदेशों को दिया। अर्जुन ने शिष्यभाव से उसका पालन किया। साधक भाइयों हमें भी सद्गुरु के उपदेशों को मानकर उसी प्रकार कार्य करना चाहिए। पाठक साधको अर्जुन के विषय में एक कथा स्वर्ग से जुड़ी है। जिसमें अप्सरा के नर्तन को देखकर वह मुग्ध हो गया। इन्द्र समझ नहीं पाये वह उसका देखना आसक्ति समझकर रात्रि में उसे अर्जुन के पास स्खलित करने हेतु भेजा। परन्तु अर्जुन ने उस अप्सरा को देखकर कहा– माता प्रणाम इतनी रात्रि को। विस्तार भय से साधक साथियों को संकेत मात्र है। गुरुदेव के उपदेश को सुनकर साधक अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हुआ। उसका मोह नष्ट हो गया। चित्त वैराग्य से युक्त हो गया। उसने सोच लिया इन्हें मारना ही उचित है। जिससे सामाजिक मर्यादा तथा कुल का धर्म जो पूरे समाज के धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला है। ऐसा अधर्म नष्ट हो जायेगा। साधक के जीवन में ऐसे ही विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक विक्षेप आते हैं। जिसका संशय सद्गुरु करते है। ह यदि सद्गुरु के सिखाये मार्ग का पूर्णतः अनुशरण करें तो निश्चय ही अर्जुन की तरह दृढ़ संकल्प वाला हो सकते हैं। सद्गुरु की रहस्यमयी वाणी उस समय तो समझ में नहीं आती। किन्तु उसका परिणाम दूरगामी दिखाई देता है। सिद्धगुफा सवांई से सम्बन्धित सब साधक भाई आज प्रभु कृपा से निहाल हो रहे हैं। इसमें साधक का कोई विशेष प्रयास नहीं दिखता है। जैसे बिजली का पखा विद्युत के सम्पर्क से चलने लगता है। हम भी ऐसे सिद्ध सद्गुरु को पाकर निहाल हो रहे हैं। हे प्रभु ऐसी ही कृपा बनाये रखें हम कलियुगी जीव हैं। आप उद्धारक हो नाथ मन को अपने में लगाने की शक्ति भी आप से ही प्राप्त होती है।

श्रेष्ठता

प्रत्येक व्यक्ति पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक प्राणी है। किसी को भी अपने आपको अनावश्यक तुच्छ अथवा हीन नहीं समझना चाहिए। यदि वही अपना मूल्य न समझेगा तो दूसरे उसे क्यों आवश्यक मानेंगे। सबसे बड़ी बात है कि मनुष्य न दीन–हीन है न तुच्छ उसे सदैव मनुष्यत्व और मनुष्य सुलभ शक्तियों में विश्वास बनाये रखना चाहिए। अन्य प्राणियों की भाँति वह न गया गुजरा है न ही तुच्छ।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

लीला धारी की लीलाएँ....

"तृतीय"

जगदीश राय बंसल "अधम"

(गतांक से आगे) :–

पुष्प प्रसाद का करिश्मा– गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चन्डीगढ़ स्थित योग प्रचार कार्यक्रम में विशेष रूप से सजाए गए उत्कृष्ट पंडाल में भक्त गण, अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता प्रभुश्री रामलाल जी महाराज के फूलों से लदे स्वरूप के सामने बैठ कर मधुर–मधुर भजनों का आनन्द लूट रहे थे। उस समय अपने गुरु देव भगवान और साथ में श्रीमती मनोरमा जो समाधिस्थ अवस्था में थी वहाँ पधार कर श्री प्रभुजी की दिव्य आरती उतारी। पश्चात् मनोरमा जी ने श्री प्रभु चरणों से पुष्प उठा कर वहाँ बैठे जिन–जिन भक्तों को वह आशीर्वात्मक पुष्प पत्ती दी, वे सब के सब ध्यानस्थ होते चले गए। फिर मनोरमा ने एक दो वर्षिय बाला को गोदी में लिया और उसके पग से जिस–जिस भाग्यशाली को छुआ सब के सब ध्यानस्थ होते चले गए। देखिए ऐसे लीलाधारी हैं हमारे आपके पतित पावन गुरुदेव जी।

आपको याद दिलाता चलूं कि गुरुदेव का हृदय विशाल होता है। और सिद्धों के संकल्प में ही सकल कल्याण निहित होते हैं। यदि गुरुदेव में अपने बच्चों के प्रति वात्सल्य और करुणा भाव न होता तो दुर्लभ पर्वतों से अपने समाधि परमानन्द को छोड़कर, अपने संस्कारी भक्तों के उद्धार हेतु इस धरा धाम पर पग रखने को विवश न होते। अगर चन्दू काका के चश्मे से देखे तो गुरुदेव की करुणा कृपा को शब्दों की माला में नहीं पिरोया जा सकता। गुरु सत्ता में ही सभी देवी देवताओं का समावेश होता है। आईए, अब दरबार के आनन्द में गोता लगाते हैं।

पुष्प कृपा लीला के पश्चात लीलाधारी गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रवचन की अमृतवर्षा प्रारम्भ हुई। जिसके मात्र अंश इस प्रकार हैं कि–

देखो लल्ला,– गीता के बारहवें अध्याय में महात्मा अर्जुन ने अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण जी से प्रश्न किया कि हे केशव ! जो अनन्य प्रेमी भक्त जन आपके सगुण रूप का चिन्तन एवं ध्यान करते हैं, और कुछ दूसरे भक्त जन आपके निराकार निर्गुण रूप की उपासना करते हैं, इन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है? इस शंका का समाधान करते हुए श्री भगवान बोले– हे अर्जुन ! जो भक्त जन श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं। किन्तु उन देह धारियों से निराकार की उपासना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जो निर्गुण का ध्यान करते हैं, वे क्या ध्यान करेंगे– किसका चिन्तन करेंगे ? उनके मन में कोई शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध नहीं है। फिर भी जो भक्त जिस तरह की उपासना करता है, मैं उसे प्यार ही करता हूँ। न कोई मेरा प्रिय है, न कोई मेरा अप्रिय है। इसलिए हे पार्थ ! तू मेरे मन में मन मिला–बुद्धि में बुद्धि मिला, इससे तू मेरे में ही मिल जाएगा।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण भगवान ने सगुण रूप की उपासना को ही महत्व दिया है। इस प्रकार प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने द्वादश अध्याय को विस्तार से समझाते हुए अपनी सरस वाणी को विश्राम देने से पूर्व अपनी आत्मीयता से सब को स्नेह भरा आशीर्वाद दिया।

सारांश– एक ध्यानी साधक यदि दूसरे व्यक्ति का स्पर्श करता है तो उसका भी ध्यान लग सकता है। कहा भी है कि:-

यस्मिन देशे वसेत योगी ध्यान योग विचक्षणः।

सोऽपिदेशः भवेत पूतः किं पुनस्तस्य बाँधवाः।।

योगीराज श्री नरसिंह मूर्ति जी को श्री प्रभु दर्शन–

सिद्धों के सम्राट योग योगेश्वर हमारे गुरुदेव भगवान श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के परम प्रिय अनुज गुरु भाई एवं हमारे परम पूज्य चाचा गुरुदेव योगीराज श्री नरसिंह मूर्ति जी महाराज एक दिन आन्ध्र प्रदेश से श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम पधारे। हमारे परम हितकारी गुरुदेव जी महाराज की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। दोनों महाराज जी अपने अतीत में खोए रहे। ऐसा लगता था कि –

ये ज़िन्दगी तो बहुत कम है, बातों के लिए।

कहाँ वक्त मिलता है, औतर बीदाई के लिए।।

मखमली बातों के आदान–प्रदान में ही अकारण दयालु जी ने स्वामी जी को बतलाया कि चन्डीगढ़ में मनोरमा जो अपने गुरु देव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज द्वारा दीक्षित है, उसे श्री प्रभु जी की आवेश समाधि होती है। यह सुनते ही स्वामी जी ने गुरु कृपा से स्वयं को धन्य समझा और अपने मन में बैठी बेरीन समस्या के समाधान हेतु सवाई से चन्डीगढ़ पहुँच गए। वहाँ स्वामी जी ने बताया कि आंध्र प्रदेश में मेरे हजारों शिष्यों को अपने इष्ट देव के दर्शन होते हैं, परन्तु जब से मैं ऋषिकेश छोड़कर आंध्र प्रदेश आया हूँ– मुझे प्रभु श्री के दर्शन कभी नहीं हुए। आप श्री प्रभु जी महाराज से पूछ कर बतादें, कि मुझे उनके दर्शन कब होंगे? प्रत्युत्तर में श्री रघुनन्दन जी ने बताया कि स्वामी जी, मनोरमा को तो श्री प्रभु जी अपनी इच्छानुसार बताते हैं। मनोरमा अपनी तरफ से कोई प्रश्न नहीं पूछ सकती, हाँ ! आपकी इस जिज्ञासा का समाधान श्री रघुवीर जी होशियार पुर वाले कर सकते हैं।

"**जहाँ चाह–वहाँ राह**" स्वामी जी होशियार पुर पहुंचे और श्री रघुवीर जी से अपनी व्यथा की मनुहार की। श्री रघुवीर जी ने अपनी मृदु वाणी से कहा–

तेरा सपना क्यों पूरा नहीं होता?

हिम्मत वालों का इरादा अधूरा नहीं होता।

जिस योगी के कर्म अच्छे होते हैं,

उसके जीवन में कभी अंधेरा नहीं होता

अत: स्वामी जी आप नहा–धोकर प्रात: तीन बजे मेरे कमरे में आ जाना, आशुतोष श्री प्रभु जी के दर्शन हो जाएंगे। तीन बजे के इंतजार में स्वामी जी का यह हाल हुआ कि–

आँखों – आँखों में कटी, मेरी यह रात।

कैसे बनाए प्रभु जी ऐसे हालात।।

परिणामत: सही तीन बजे स्वामी जी, श्री रघुवीर जी के कक्ष में प्रवेश कर गए। स्वामी जी ने जैसे ही श्री रघुवीर जी के श्री चरणों में सादर प्रणाम किया, उसी समय स्वामी जी की समाधि लग गई। समाधि में श्री स्वामी जी को त्रय जग पावन दया सिन्धु प्रभु श्री राम लाल जी महाराज के साक्षात जटा धारी रूप के दर्शन प्राप्त हुए।

ध्यान धारणा जब समाधि हो गया।

रोम रोम तब ध्यानस्थ हो गया।।

अब स्वामी जी ने श्री प्रभु जी से अपने गृहस्थ रूप के अवलोकन की महत्वाकांक्षा की, तब आशुतोष श्री प्रभु जी ने स्वामी जी को अपने गृहस्थ रूप के दर्शन दिए। अब श्री स्वामी जी ने दुराग्रह किया कि कृपा करके मुझे वह मनोहारी रूप दिखाएँ, जिस समय प्रथम बार मैं आपकी शरण में ऋषिकेश आश्रम में आया था। वह दिन मेरे लिए जीवन का स्वर्णमय जीवन था। तब आल्हादित श्री प्रभु जी ने वह रूप भी दिखलाया। इस दुर्लभ रूप को देख कर श्री स्वामी जी अपनी समाधिस्थ अवस्था में ही श्री रघुवीर जी के श्री चरण पकड़ कर बहुत रोए। इस रोने पर श्री प्रभु जी ने स्वामी जी को बहुत–बहुत प्यार किया। स्वामी जी अपनी टीस तो कभी की भूल चुके थे और श्री प्रभु जी से पुन: अनुरोध किया कि महाराज जी मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

श्री प्रभु जी ने कहा– " **अमृतसर हमारी जन्म भूमि पर मन्दिर बनवा देना।** " स्वामी जी गद–गद होकर अपने स्वगृह लौट आए। आन्ध्र प्रदेश पहुँच कर स्वामी जी ने समुद्र तट पर स्थित अपनी सारी भूमि बेच डाली। विक्रय राशि बैंक में जमा कर दी और बैंक की पास बुक लेकर होशियार पुर श्री रघुवीर जी से मिले। श्री रघुवीर जी ने कहा कि स्वामी जी आप अमृतसर जा कर श्री प्रभु जी के परिवार से वार्तालाप कर जन्मभूमि की राजस्टरी अपने नाम पर करा लें और....। स्वामी जी अमृतसर गए और घरवालों से श्री प्रभु आज्ञा बतला कर जन्मभूमि पर मन्दिर बनाने की बात की। मगर उन्होंने उक्तभूमि विक्रय करने से साफ इन्कार कर दिया। अब स्वामी जी अमृतसर से चन्डीगढ़ और सब वार्तालाप से श्री रघुनन्दन जी को अवगत कराया। स्वामी जी की उदासी इस समय अपनी गोद में बिठा कर लोरिया गा रही थी। श्री रघुनन्दन जी " **कर्माणा गहनों गति** " के आधार पर स्वामी जी से कहा कि स्वामी जी इसमें श्री प्रभु जी की क्या लीला है, ये तो वे अनादि सिद्ध ही जाने। आप निराश न हों। आप जो कर सकते थे– प्रभु आज्ञा से सब कुछ किया। मगर न जाने श्री प्रभु जी कब और कैसे अपने मन्दिर निर्माण का श्रेय किस को देना चाहते हैं? परिणामत: स्वामी जी स्वगृह लौट चले और सन् 1978 में अपने भौतिक शरीर को त्याग कर गोलोक सिधार गए।

श्री कैलाश जेरथ को प्रभु दर्शन– (श्री रघुनन्दन द्वारा)

एक दिन जब मैं चंडीगढ़ की 22 से. मार्किट में गया तो वहाँ मेरे एक सहपाठी एवं प्रिय

मित्र श्री जेरथ साहिब परिवार सहित मिले। उन्होंने बताया कि हम फौरेन से चंडीगढ़ आए हैं। यहाँ किराए पर मकान लेकर गोरमिंट पोस्टींग की कोशिश करेंगे। मैं उन्हें घर 401/22 पर ले आया। मैंने उनसे यहीं हमारे साथ रहने का आग्रह किया तो वे मान गए। सहमत हो गए। हमारी भाभी जी तो दैनिक प्रातः उठ कर स्नानादि कर श्री प्रभुचरणों में पूजा पाठ करती थी, मगर भाई साहिब.....? एक दिन मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब भाई साहब को बन्द नेत्रों से ध्यान मग्न में श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने बैठे देखा। जब वे ध्यान से उठे तो मैंने पूछा कि भाई जी इतने दिनों में प्रथम बार मैंने आपको श्री प्रभुजी के चरणों का भ्रमर बने देखा है, अवश्य कोई तात्विक बात है? श्री कैलाश जी ने बतलाया कि आज चार बजे मेरी नींद टूट गई तो इन जटाधारी महाराज को स्थूल रूप से हमारी आपकी चारपाईयों के चक्कर लगाते हुए प्रत्यक्ष देखा। क्षण भर मैंने सोचा कि यह मेरी अपनी सोच है। भला– ये कैसे सम्भव है? इतने में ही श्री महाराज जी ने बोल कर कहा कि " हम अपने बच्चों के लिए, इसलिए बाहर आए थे कि इनको कोई तकलीफ न हो। " मैं तो इनको एक फोटो के रूप में ही देखता था लेकिन आज यह पता चला कि ये प्रभु जी तो सर्वसमर्थ्य–सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापक हैं.....। इसे संस्कार का वेग ही कहिए कि उसी दिन भाई कैलाश जी की पोस्टिंग चीफ इन्जीनियर के पद पर करनाल (हरियाणा) हो गई।

कुछ भाई ही जानते हैं कि हमारे दादा गुरु जगत नियन्ता– सर्वाधार अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्री राम लाल जी महाराज कामना करने वालों के लिए काम धेनू और कल्पना करने वालों के लिए कल्पवृक्ष है। इनकी तपस्या करने से ऐन्द्रिय सिद्धि मिलती है,– ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर दर्शन, दूर श्रवण एवं रस गन्ध आदि शक्तियाँ आ जाती हैं। इनके संकल्प में ही सकल कल्याण निहित है।

ये यथा माँ प्रपद्यन्ते– अथवा जाकी रही भावना जैसी :–

जगत नियन्ता अनन्त विभूषित योग योगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज के आदेश पर हर रविवार को चंडीगढ़ से. 22 में अनवरत सत्संग होता था। इस सत्संग में श्री विद्यारत्न शर्मा एवं इनकी धर्म परायण पत्नि बड़े उमंग से आते थे और श्री प्रभु चरणों में प्यारे–प्यारे भजन भी बोलते थे। सत्संग के मध्य समाधिस्थ मनोरमा ने बंद नेत्रों से श्रीमती शर्मा को श्री प्रभु दरबार से आशीर्वादात्मक पुष्प प्रसाद दिया। एक अन्तराल पश्चात श्री प्रभु प्रेरणा से श्री रघुनन्दन जी ने शर्मा साहिब से पूछा कि आपके घर श्री प्रभु कृपा से कोई घटना हुई हो तो कृपया हमें बतलाईए। श्रीमती शर्मा ने कहा कि घटना ही नहीं बड़ी विलक्षण घटना हुई है। जिस दिन श्री शर्मा जी एव प्रिय पुत्र को तीव बुखार था। उस दिन मैं बैड पर लेटी–लेटी चिन्ता कर रही थी कि प्रभु जी इनका बुखार और बढ़ा या तबीयत और खराब हुई तो इनको कौन सम्भालेगा ? चूंकि मन की गहराई और समुद्र की गहराई का अन्त नहीं होता। मैं मानसिक प्रार्थना कर ही रही थी कि अचानक मेरे बैड के पास बड़े तेजस्वी जटा धारी प्रभु जी को खड़े देखा। मैं डर के मारे भयभीत हो कर रसोई में आ गई। अपनी घबराहट कम करने के लिए एक मौसमी और प्लेट लेकर बैड रूम में आ गई। मौसमी छील कर खाने लगी तो वही प्रभु जी को पास खड़े देखा। मेरे होश उड़ गए। मुझे कुछ पता नहीं आव देखा ना ताव झट पड़ोसी के ड्राईंग रूम में पहुँच कर सोफे पर लेट गई। मेरा शरीर थर–थर काँप रहा था। पड़ोस वालों ने जब मुझे पसीने से लथ

पथ देखा तो तुरन्त शर्मा जी को बुला लाए, तब तक मैं बेहोश हो चुकी थी। शर्मा जी ने मुझे बेहोश पाया तो फौरन घर से होमियो पैथिक दवाई लाकर मेरे मुँह में डाल दिया। कुछ पश्चात जब मुझे होश आया तो आप बीती बातें शर्मा जी को सुनाई।

जब यह अलौकिक घटना हमने श्रीमती शर्मा से सुनी तो मेरे (रघुनन्दन) मन में तरह–तरह के प्रश्न उछलने लगे कि श्री प्रभु के दर्शन तो बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। फिर मिसिज शर्मा को परम–आनन्द की अनुभूति होने के स्थान पर भय क्यों लगा? उसी रात मनोरमा को स्वप्न समाधि हुई जिसमें आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ने बतलाया कि बेटी श्रीमती शर्मा के घर आए तो हम स्वयं थे, उसके भयभीत होने का कारण यह हुआ कि हमने तुम्हारी समाधि वस्था में पहली बार उसे सत्संग में पुष्प प्रसाद दिया तो उसने मनोरमा में भूत बाधा समझ कर, डर के कारण वह पुष्प प्रसाद घर में लगे आम के पेड़ के नीचे डाल दिया। फिर जब दूसरी बार हमने उसे फूल पत्तियाँ प्रसाद में दी तो उसने घर में लगी तुलसी के गमले में डाल दिया।

श्रीकृष्ण के रूप में हमने अर्जुन को कहा था कि "हे अर्जुन जो भक्त मुझे जिस भाव से भजते हैं, मैं भी उनको उसी भाव से भजता हूँ।" गीता 4/11 इसी विषय में भक्त शिरोमणी बाबा तुलसी दास लिखते हैं कि विभीषण जी जब राम जी के खेमें में आए तो वानर राज सुग्रीव से कहा था–

निर्मल मन जन सो मोही पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

मिसेज शर्मा ने हमें भूत भाव से सुमिरा था अतः उसी भूत भाव से हमारा दर्शन होने पर उसे डर लगा।

परिणामतः हम श्री शर्मा जी के घर गए। मैंने श्रीमती शर्मा जी से पूछा कि बहिन जी! क्या आपको सत्संग में समाधिस्थ मनोरमा से पुष्प प्रसाद मिला था? उसने उत्तर दिया कि हाँ दो बार पुष्प प्रसाद मिला था। एक बार मैंने आम वृक्ष के नीचे डाल दिया और दूसरी बार तुलसी के गमले में डाल दिया था। क्योंकि मेरी यही धारणा थी जो आप बता रहे हैं। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से बताया कि मुझे नहीं पता था कि गुरु देव जी महाराज के कृपा प्रसाद से अपनी आत्मा आनन्द को प्राप्त होती है। मुझे पश्चाताप हो रहा है कि अगाध करुणा सागर स्वयं हमारे घर पधारे और स्वागत तो दूर मैं प्रणाम भी न कर सकी। मगर श्री प्रभु जी की यह तरण–तारण लीला सदैव मेरे मन में बसी रहेगी। मैंने कहा– सुना होगा कि–

बिना नौका के तैरा दे, मेरा मांझी है अनोखा।
ना छोड़ो इसका दामन, अब पाके ऐसा मौका।।

(क्रमशः)

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सिद्ध योग और साधन योग

श्री मनमोहन कृष्ण मिश्रा

हम लोग बहुत भाग्यशाली हैं कि योग की शिक्षा–दीक्षा श्री सद्गुरुदेव भगवान जी से प्राप्त हुई, जो सिद्धेश्वर हैं, योग योगेश्वर हैं। हमें यहाँ यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि सिद्ध योग और साधन योग में अंतर क्या है। साधन योग वह है जिससे एक साधक यम, नियम, आसन, प्राणायाम इत्यादि की साधना करके योग सिद्ध करता है। इससे योग तो सिद्ध हो जाता है, लेकिन समय बहुत लगता है, कई जन्म भी लग जाते हैं।

सिद्धों द्वारा प्राप्त की गई योग–शिक्षा या योग–दीक्षा को सिद्ध योग कहते हैं। हम सब लोग सिद्ध योग के ही विद्यार्थी हैं। सिद्ध योग से योग शीघ्रातिशीघ्र/ तुरंत सिद्ध हो जाता है। सिद्ध पुरुषों के दीक्षा देने के तुरंत पश्चात मिनटों में ही कुंडलिनी शक्ति का जागरण हो जाया करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि सिद्ध लोग कब कृपा करते हैं और किन पर कृपा करते है। देखिए, दो तरह के कर्म होते हैं– निष्काम और सकाम। सकाम कर्म किसी फल की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं– जैसे पुत्र की प्राप्ति हो, पुत्री का विवाह हो जाए या नौकरी लग जाए इत्यादि। यह सब सकाम कर्म हैं। जब हम मंत्र जप, ध्यान, अनुष्ठान किसी फल को प्राप्त करने की इच्छा से करते हैं, तो हमारे वे कार्य सिद्ध हो जाते हैं यानी कि हमें फल की प्राप्ति हो जाती है। परंतु हमें पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि इससे हमें पुण्य की प्राप्ति नही होती।

एक उदाहरण के द्वारा हम इसे समझने का प्रयास करेंगे। श्री नरसिंह मूर्ति जी हमारे गुरुदेव भगवान जी के गुरु भाई थे। उनकी शिष्या, जो मद्रास की कभी राजकुमारी थी, ने काम– कोटि के शंकराचार्य जी को श्री महाप्रभु रामलाल जी का स्वरूप दिखाकर पूछा कि यह कौन हैं तो उन्होंने कहा– नारायण स्वयं, नारायण स्वयं, नारायण स्वयं। और उन्होंने कहा कि उनकी फोटो में ही हजारों लोगों को मोक्ष दिलवाने की शक्ति है। श्री नरसिंह मूर्ति जी की शिष्या ने श्री शंकराचार्य जी से पूछा कि उनके गुरुदेव जो अनुष्ठान कर रहे हैं, उसका उन्हें फल मिलेगा कि नहीं मिलेगा। इस पर उनके गुरुदेव ने कहा कि फल तो उन्हें अवश्य मिलेगा, लेकिन वह फल उन्हें नहीं मिलेगा जिसकी उन्होंने कामना की है। उनके गुरुदेव इसको योग (निष्काम कर्म) में परिवर्तित कर देंगे और वही हुआ भी। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने उनके अनुष्ठान को योग में परिवर्तित कर दिया। और श्री नरसिंह मूर्ति जी को पता भी चल गया कि श्री महाप्रभु जी ने उनके अनुष्ठान के फल को योग में परिवर्तित कर दिया।

लेकिन जो साधक निष्काम भाव से कर्म करते हैं (बिना किसी फल की इच्छा के), उनको पुण्य की प्राप्ति होती है। और पुण्य की प्राप्ति होने का परिणाम/फल बहुत महत्वपूर्ण एवं अद्भुत है और वह है– सिद्धों का संग प्राप्त होना। और फिर वे सिद्ध उनको योगी बना देते हैं।

योगी बनने का यह उपाय सरल, महत्वपूर्ण, अद्भुत एवं तुरंत–प्रभावी है। यही बात हमारे उपनिषदों में भी कही गई है–

पश्चात् पुण्येन लभते, सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया, योगी भवति नान्यथा।।

पश्चात्पुण्येन लभते सिद्धेन सह सङ्गतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।। 1/50 ।।

–योगशिखोपनिशद्

ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे ।। 1/51 ।।

–योगशिखोपनिशद्

भवेद्विधे = भवेत् विधे (विधि=ब्रह्मा जी)

अर्थात्– योग के बिना ब्रह्मा जी को भी ज्ञान / मोक्ष नहीं मिलता

–शिवभाषितम् (भगवान शिव कहते हैं)

अर्थात्– पुण्यों की वृद्धि (जो निष्काम कर्म से होती है) के बाद / उसके फलस्वरूप मनुष्य सिद्ध संगति को प्राप्त करता है और उसके बाद सिद्धानुग्रह से वह योगी बनता है। तभी संसार के प्रपंच खत्म होते हैं। इसलिए योग रहित (सकाम कर्म) ज्ञान से मुक्ति प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत् योग युक्त (निष्काम कर्म) ज्ञान ही मुक्ति का देने वाला है।

इसलिए हम निष्काम कर्म करें, सिद्धों की कृपा प्राप्त करें और योगी बनें। अन्त में श्री गुरुदेव भगवान जी के चरणों में यही प्रार्थना है कि वे आपको निष्काम कर्म की ओर अग्रसर करें, आप पर कृपा बनाए रखें, आपका मंगल करें आपका कल्याण करें।

मिथ्याचारी कौन है ?

जो असत्य होते हुए भी सत्य जैसा दीखे वही मिथ्या है। जो असत् को ही सत दिखाये वही मिथ्याचारी होता है। मिथ्याचारी ऊपर से दिखता है बिल्कुल ठीक, किन्तु भीतर होता है बेठीक।

– साधु वेश में पथिक

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मन की तरंग

श्रीमती सरिता भारद्वाज- एम.ए.बी.एड. सांख्ययोगाचार्य

मन की एकाग्रता के लिए ही यम–नियम आसन प्राणायाम तथा मंत्र जप आदि क्रियायें एवं साधनायें कही गई हैं। मन समुद्र की तरंगों की तरह कामनाओं को जन्म देता रहता है। इच्छायें जन्म–मरण का कारण बनकर प्राणी को चौरासी के चक्कर में डालती हैं। शरीर को अग्नि जलाकर राख कर देता है किन्तु मन की वासनायें अग्नि से भी नष्ट नहीं होती। ज्ञान और सत्संग द्वारा मन की चंचलता कुछ देर को शान्त होती हैं। प्राणायाम तथा उन्मनी समाधि से मन मार दिया जाए तो भी विषयों के उपस्थित होने पर मन भूत की तरह फिर जीवित हो उठता है। जैसे औषधि सेवन करने के साथ–साथ पथ्य रखना अनिवार्य होता है, अन्यथा दवा से लाभ नहीं हो पाता, उसी प्रकार अभ्यास के साथ–साथ पथ्य रूपी वैराग्य–निःसंगता, अपरिग्रह, मौन का पालन करना आवश्यक है जहाँ मीठा रस होता है वहाँ चींटियाँ और मक्खियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। इसी प्रकार जहाँ विषय रस या भक्तिरस होता है वहाँ मन टिकने लगता है। उसी समय मन को पकड़ कर उस पर काबू कर लेने पर मन ध्यान समाधि की ओर चलकर बड़ी–बड़ी ताकतें प्रदान करा देता है।

जैसे कपूर या तो केले में सुरक्षित बना रह सकता है या कालीमिर्च में, उसी प्रकार मन माया मोह में या शब्द ब्रह्म में लगकर रह पाता है। जब मन माया–मोह में फँस जाता है तो उसकी गति गन्दगी पर बैठने वाली मक्खी की सी होती है। जब मन शब्द ब्रह्म में लवलीन होता है तब वह मधुमक्खी की तरह बन जाता है। नाम जप में यदि मन को आनन्द आने लग जाए तो उसकी इधर–उधर भागने की वृत्ति बन्द हो जाती है। केवल ज्ञान से मन की तरंगें शान्त नहीं होतीं जैसे मिश्री की डेली में बांस की फांस कुछ समय साथ रहने पर भी मिठास ग्रहण नहीं कर पाती, जैसे हीरे मोतियों की माला के लिए धागा होता है वह रत्नों की आभा को धारण नहीं कर पाता उसी प्रकार केवल शास्त्र ज्ञान से मन की उथल–पुथल शान्त नहीं होती। नित्य निरन्तर अभ्यास करने से वृत्ति एक लक्ष्य पर स्थिर होने लगती है। जैसे सोते समय मन से नाना प्रकार के स्वप्न देखते हैं, ऐसे ही मन से ही प्रभु नाम का जप, कीर्तन मनन होते रहने पर मन की खटपट कम हो जाती है।

जैसे कोई तिनका आंधी के वात्याचक्र में पड़कर उससे निकल नहीं पाता, उसी में घूमता रहता है, उसी प्रकार मन जब प्रभु के नाम और रूप के बवण्डर में घिर जाता है तो उसकी इधर–उधर की भाग दौड़ कम हो जाती हैं। प्रभु के पावन नाम तथा दिव्यरूप की धारणा एवं ध्यान द्वारा साधक जब हृदयंगम कर लेता है तो मन उस बीज की तरह हो जाता है जो अग्नि में भुन जाने के बाद पृथ्वी में डाला गया हो। ऐसा बीज क्या कभी उग सकेगा। इसी प्रकार जो स्वातिबूंद सीप में प्रवेश कर जाती है वह बाहर के जल में या आकाश में वापिस कैसे जा सकती

है। यह मन रूपी भ्रमर प्रभु के दिव्य गुणों में आसक्त होकर निश्चेष्ट बन जाता है। जिस प्रकार भ्रमर कमल तथा केतकी के फूलों की गन्ध से आकृष्ट होकर और पुष्पों की ओर नहीं जाता, उसी प्रकार जब मन को प्रभु नाम के रस का स्वाद मिलने लगता है तो वह वृक्ष की छाया के फलों के पीछे नहीं दौड़ता। कहा जाता है कि लोहे की सुई अमलवेत में कुछ देर लगा दी जाय तो वह गल जाती है, फिर उससे सिलाई का काम नहीं होता। इसी प्रकार प्रभु के पावन नाम में मन लगा दिया जाए तो वह भी सुई की तरह गल जाता है, नाम में ही लयता आ जाती है। मन शान्त निस्तब्ध उदधि की तरह शक्ति का सागर बन जाता है। फिर सांसारिक विषय सुखों तथा देहासक्ति के पीछे मन मतवाला नहीं बनता। संत रज्जब लयावस्था को प्राप्त मन की स्थिति का वर्णन करते हैं कि ऐसा मन अरथी पर पड़े हुए मुर्दे के समान निष्काम होता है। कोई उसकी पूजा करे या उसमें अग्नि लगावे, वह किसी से प्रभावित नहीं होता।

यूँ मन मृतक ह्वै रहे, तो मारे नाहीं।
माया में न्यारा रहै, जिव जगपति मांही।।
ज्यों मुरदा अरथी पड्या, बरतणि बहु वानी।
औरों की भांवरी भई, उन कछु न जानी ।।1।।
निष्कामी न्यारा रहै, प्रतिमा परि खेले।
बरतणि बरतै विगत सौं, उर आपन मेलै।।2।।
बाजीगर की पूतली, बाजीगर हाथैं।
रज्जब राखै त्यों रहे, नहि अवगुण साथैं ।।3।।

परम चेतन का अंश है मनुष्य !

मनुष्य उस परम चेतन परमेश्वर का अंश है। विभिन्न प्राणी परमात्मा से उत्पन्न होकर उसी में लय होते हैं। यह उत्पत्ति एवं लय की लीला इसलिये रची गयी है कि इस विश्व में जो प्रेम का अमृत भरा हुआ है उसका जीव रसास्वादन करे और उस आनन्द से परितृप्त होकर अपने को धन्य माने।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सद्गुरुकृपा का प्रभाव

श्री त्रियुगीनाथ त्रिपाठी, एम. ए.

घटना 1976 ई० की है। इस घटना के पहले कभी मैं प्रेत-बाधा में विश्वास नहीं करता था। मेरी श्रीमती गीता त्रिपाठी, जो पं० दशरथ त्रिपाठी की पुत्री हैं, वे अनेक बार सवाई आश्रम अपने माता-पिता के साथ जा चुकी थीं। व प्रभुजी के स्नेहसिक्त आशीर्वाद को प्राप्त कर चुकी थी उन्हें, अपने प्रथम नवजात शिशु के सहसा कालकवलित हो जाने से तीव्र मानसिक आघात पहुँचा इसी वजह से मानसिक रूप में वे काफी उद्विग्न आवेश में रहने लगीं थी। घर परिवार के सदस्य भी बहुत चिन्तित हुए। प्रायः यह अपने होश में नहीं रहती थीं। ऐसा लगता था जैसे कोई अदृश्य शक्ति, इन्हें आवेशित कर रही है, इस आवेश की स्थिति में उसे कोई सामान्य ज्ञान नहीं रहता था तथा अनापशनाप व्यर्थ की बातें बकती थी, साथ ही ठीक से नींद भी नहीं आती थी।

इस परेशानी से ऊबकर उसके पिता जी ने इन्हें गुरुदेव जी की शरण में लाने का विचार किया मुझे भी इनके साथ प्रभुजी के दर्शन करने का सुअवसर मिला। हम लोग गुरुदेवजी के ऋषिकेश आश्रम के उत्सव में जा पहुँचे। वहाँ पर एक रात्रि को वह आवेश में परेशान होने लगीं पं० दशरथजी गुरुदेव जी के पास पहुँचे उन्होंने कृपा प्रसाद दे दिया।

कुछ आराम हुआ, पर पूर्ण आराम के लिए गुरुदेव जी ने उन्हें सवाँई सिद्धगुफा जाने के लिए कहा। हम लोग ऋषिकेश उत्सव बिताकर सवाई सिद्ध गुफा आश्रम जा पहुँचे, सद्गुरुदेव भी ऋषिकेश से पधार चुके थे। गीता प्रभुजी द्वारा बताये मंत्र का जाप कर रही थी, वह जाप में तल्लीन होकर गुफा में बैठ गयी ! फिर क्या था जैसे अधिकारी के सामने चोर रहता है, वैसे ही महाप्रभु की तपोभूमि व सिद्धगुफा मे प्रवेश करते ही वह आवेश में डरने व रोने लगी। बहुत जोर-जोर की आवाज में विलाप करने लगी। हम लोग बाहर थे फिर पं० दशरथ त्रिपाठी के आग्रह पर सद्गुरुजी ने गुफा में प्रवेश किया व प्रेतात्मा को फटकारते हुए उसकी नासिक दबाई, तथा अपूर्व शक्तिपात किया। गुरुदेवजी के इतने प्रयास से वह प्रेतात्मा का (मानसिक क्लेश) बिल्कुल ठीक हो गया। गुरुदेवजी ने कहा अब इस मुनिया को कोई परेशानी (मानसिक क्लेश) नहीं होगी। हम लोग आश्चर्यचकित रह गये। आज तक इतना समय बीत गया पर फिर कभी भी गीता को प्रेतात्मा का आवेश, (मानसिक क्लेश) नहीं हुआ। वह परेशानी प्रभु कृपा सिद्धगुफा व सद्गुरुदेवजी की करुणा से हमेशा हमेशा के लिए दूर हो गयी। लोक कल्याण में लिप्त अपने बच्चों पर विशेष कृपा करने वाले, महाप्रभु गुरुदेवजी के श्री चरणों में हार्दिक, श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए मैं इस घटना पर उनके अमोघ कृपा प्रसाद का प्रायः स्मरण कर लिया करता हूँ।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

स्वास्थ्य प्राप्ति के सात्विक उपाय

श्री शिवानन्द

स्वास्थ्य–रक्षा के लिए कुछ बातें विशेष आवश्यक हैं – चित्तशुद्धि (चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि विकारों से मुक्ति), नियमित एवं संयमित जीवन, उचित भोजन, परिश्रम, व्यायाम तथा विश्राम।

चित्तशुद्धि का अर्थ है– चित्त को निर्विकार बना लेना। चित्त के समस्त विकारों का मूल कारण मोह है। सच तो यह है कि केवल सभी मनोविकार ही नहीं, अपितु अधिकांश शारीरिक विकार भी मोह के कारण ही उत्पन्न होते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान एवं औषधि–विज्ञान स्पष्ट रूप से इस तथ्य का साक्ष्य कर रहे हैं। पहले मानसिक विकार मन में उत्पन्न होते हैं, तत्पश्चात् शरीर में दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

मनसाः विकाराः पूर्व मनसि भवन्ति, पश्चाद्दोषैरनुबध्यन्ते।

मन को पवित्र एवं बलवान् रखने के लिए भोजन की पवित्रता का विशेष महत्व है। '**मनसो भुक्तसम्भूतिः** ' अर्थात् मन का जन्म किये हुए भोजन से होता है। प्रसिद्ध लोकोक्ति है– 'जैसा खाये अन्न, वैसा हो जाये मन।' ईमानदारी और मेहनत से कमाये हुए धन द्वारा खरीदे हुए अन्न से बनाया हुआ स्वच्छ भोजन मन को बल प्रदान करता है।

महान् द्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास जी ने सूत्र रूप से यही निश्चय किया था कि, ' मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। ' शारीरिक तथा मानसिक कष्ट का प्रधान कारण मोह ही है। प्रायः हम कर्त्तव्य–भावना से प्रेरित न होकर मोह के कारण ही अपना समस्त क्रिया–कलाप करते हैं। प्राणियों तथा वस्तुओं के प्रति हमें मोह होता है। राग–द्वेष इसके दो पहलू हैं। वस्तुओं के परिग्रह की धुन भी मोह के कारण ही होती है और परिग्रह ही छोटे झगड़ों और महान् युद्धों का कारण, अप्रच्छन्न अथवा प्रच्छन्न रूप से होता है।

अन्य व्यक्ति की किसी वस्तु के नष्ट होने पर हमें दुःख नहीं होता है। जिस व्यक्ति से हमारा जितना मोह है, उसी के अनुपात में हमें उसके दुःख में दुःख होता है। जब हमारी किसी वस्तु का नाश होता है, तब हमें बड़ा दुःख होता है। सैकड़ों कीमती घड़ियाँ प्रतिदिन टूटती हैं, परन्तु हमें उनका ध्यान भी नहीं होता। किन्तु यदि मेरी घड़ी टूट जाती है तो घोर क्लेश होता है, इसका कारण मोह ही तो है। मुझे अपनी घड़ी के प्रति मोह है, अन्य व्यक्तियों की घड़ियों के प्रति नहीं है। सैकड़ों व्यक्ति नित्य–प्रति मृत्यु को प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरे किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो तो मुझे दुःख होता है। इसका कारण मोह है। जितनी मोह की मात्रा हमारे मन में किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति होती है उसके सम्बन्ध में हमें उतना ही दुःख होता है। हमारी इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि हमें मोह के कारण ही विविध वस्तुओं के प्रति आकृष्ट कर देती हैं तथा उन वस्तुओं की संप्राप्ति एवं संग्रह के द्वारा हम मिथ्या–तुष्टि का अनुभव करते हैं। कहीं चटपटे, गरिष्ठ भोजन से हम शरीर को कष्ट में डाल देते

है, कहीं वस्तुओं के विषय में मेरा–तेरा के झगड़े से मन को शोक में डाल देते हैं तथा बुद्धि को अहंकार में डाल देते हैं। प्रेम सुखद होता है, मोह दु:खद। यदि पुत्र कुछ दिनों के लिए दूर चला जाए तो एक ओर माता–पिता क्लेश–निमग्न हो जाते हैं तथा दूसरी ओर पुत्र भी दु:खी रहता है, यह मोह का ही फल है। बच्चे के रोगी होने पर शीघ्र चिकित्सा करने के बजाय मोह से रोने बैठ जाते हैं।

निश्चय ही हमें मोह से त्याग करना चाहिए। मोह त्याग का अर्थ यह नहीं है कि हम वस्तुओं एवं व्यक्तियों को छोड़ दें अथवा उनसे घृणा करें। वस्तुओं एवं व्यक्तियों में तो कोई दोष नहीं है। मोहरूपी दोष तो हमारे मन में है। मोह त्याग का अर्थ यह है कि हम उन वस्तुओं का त्याग नहीं, बल्कि उनकी वासना, उनके प्रति मिथ्या आकर्षण का त्याग करें, संसार का त्याग नहीं, बल्कि सांसारिकता का त्याग करें। संसार को तो छोड़ दिया, वस्तुओं का बाह्य परित्याग भी कर दिया, किन्तु मोह अब भी सताता है तो क्या लाभ हुआ ? वस्तुओं का उपभोग भी करें, प्रयोग करें, किन्तु केवल आवश्यकतानुसार करें, त्यागभाव से करें तथा निर्लेप रहें।

ईशावास्यमिदं सर्वं, यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:, मा गृध: कस्य स्विद्धनम्।।

–ईशोपनिषद्

इस गतिशील जगत् में जो कुछ भी है, वह सब परमात्मा से आपूरित है, सृष्टि के कण–कण में ईश्वर व्याप्त है, सब ईश्वरमय सब ईश्वर का है। अतएव हमें त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए। किसी के धन की ओर गिद्ध की लाभी दृष्टि से मत देखो।

त्यागपूर्वक, मोहरहित होकर वस्तुओं का उपभोग करना सीखें तथा व्यक्तियों से मोह रहित प्रेम करना सीखें।

मोह सभी मनोविकारों का सेनापति है। यदि मोह को भगा दिया तो इसकी सेना भी भाग उठेगी। कटक में भगदड़ मच जाएगी। मोह मूल है।

" छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्। " (मूल के छिन्न होने पर न शाखा रहती है, न पत्ते ही)।

यदि हम कठोर दण्ड भी दे रहे हों तो भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि कर्त्तव्य–भावना से प्रेरित होकर दें। यह आदर्श स्थिति है। हम मोह त्यागकर, मनोविकारों को छोड़कर, जितना भी मन पवित्र कर लेंगे उतना ही सुन्दर स्वास्थ्य एवं सुख प्राप्त कर सकेंगे। मोह त्याग से संतोषवृत्ति भी स्वयं आ जाती है। ' **सन्तोषादनुत्तमसुख-लाभ:।** ' सन्तोष से बढ़कर कोई सुख–लाभ नहीं है। सन्तोष के बिना चित्तवृत्ति शान्त एवं स्थिर नहीं होती। सन्तोष के बिना मनुष्य को न केवल अपना कर्त्तव्य नीरस प्रतीत होता है, बल्कि अपने अधिकार भी कष्टप्रद हो जाते हैं ; अपना धन–वैभव भी कचोटने लगता है। तृष्णा नरक है, सन्तोष स्वर्ग है। हम ईर्ष्या के कारण भी सन्तोष नहीं करते हैं। " **आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत परखेरो।** " जीवन में सादगी अपनाने पर ही हम सन्तोष धारण कर सकते हैं।

मन को शुद्ध करने के लिए अनेक उपाय हैं, हमें अपने मन का निरीक्षण करना चाहिए। जिस प्रकार हम दर्पण में मुख देखकर उसके दाग–धब्बे मिटाते हैं उसी प्रकार अन्तर्मुखी होकर अन्तर्वृत्ति–निरीक्षण (Introspection) करें। अपने दोषों, विकारों को पहचान कर, एक–एक करके, चुन–चुनकर धैर्यपूर्वक उनका निराकरण कर दें। स्नान के द्वारा जैसे शरीर को शुद्ध करते

है, मन को भी वैसे ही सत्य के अभ्यास से शुद्ध करें। सत्य सोचने, कहने एवं करने का अभ्यास मन की शुद्धि के लिए सहायक है।' अद्भिः गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। 'जल से शरीर के गात्र शुद्ध होते है। सत्य से मन शुद्ध होता है, मोह के कारण बाहर की दुनिया हमारे मन में बसी पड़ी है और हमें चैन से नहीं बैठने देती। ईर्ष्या–द्वेष, घृणा–क्रोध, भय–चिन्ता हमें सताते ही रहते हैं। मोह निराकरण के द्वारा हम मन में से जितना–जितना इस बाहरी दुनिया को निकाल देंगे और उसे सद्‌विचार, हरिस्मरण से भर लेंगे, उतना–उतना ही सुख होता चला जाएगा।

शरीर–शुद्धि होने पर तथा स्वच्छ वस्त्र पहनकर कैसा हर्ष होता है? मन के स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल करने पर तो अनुपम उल्लास की प्राप्ति होती है। मानसिक स्वच्छता होने पर अनिर्वचनीय सुख का अनुभव होता है जो कि शरीर को भी पुष्ट करता है। दिन में एक ऐसा समय निश्चित कर लें जब हम अपने–आपको कार्य–व्यस्तता से मुक्त करलें। नित्य–प्रति प्रातः–सायं अथवा सोने से पूर्व जब भी सुविधा हो, अकेले बैठकर अपने विचारों को देखें। हम थोड़ी देर तक अपने साथ भी बैठना सीखें जब शान्त भाव से अपने ही विचारों का जुलूस देखें। मन के साथ मैत्री जोड़कर मन को धीरे–धीरे समझाकर, धनात्मक (Positive) विचारों की सहायता लेकर, एक–एक करके ईर्ष्या, द्वेष, भय, घृणा विषाद, यशलालसा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि विकारों का शमन (न कि दमन) करें। कर्त्तव्य–निष्ठा से प्रेरित होकर उत्साह से परिपूर्ण होकर इन विकारों से ऊपर उठ कर कर्म करना सीखें। अपने एक–एक दोष के शमन का सरल उपाय करें, अपने मन को मित्र मानकर प्रयत्न करें तथा सदैव साहस और विश्वास रखें। नित्यप्रति तटस्थ आत्म–चिन्तन, विचार–विश्लेषण करते हुए अपने दोषों को धनात्मक मनन, चिंतन तथा प्रयत्न के द्वारा निर्बल कर दें, तभी मन को प्रभु में भी एकाग्र कर सकेंगे। विकार मन तथा शरीर को निर्बल बनाते हैं। इनसे मुक्त होने पर शक्ति अबाधित होकर प्रबल हो जाती है जैसे धुआँ हटने पर अग्नि धधक उठती है। बुरे विचार आने पर भी अपने को न कोसें, उन्हें आने दें तथा धनात्मक विचार जगाकर उनका शमन करें। दोषों पर ही ध्यान देने से वे बलवान् हो जाते हैं, अतएव मन को मित्र बनाकर धनात्मक विचारों को प्रबल करें। बुरे विचार स्वतः शान्त हो जायेंगे। जहाँ आत्म–सुधार का संकल्प है, वहाँ आत्म–सुधार अवश्य होगा।

हम अपनी तुलना दूसरे व्यक्ति से न करके अपने विगत और वर्तमान की ही तुलना करें और नित्यप्रति मन, वचन और कर्म में पहले की अपेक्षा अच्छा होने पर प्रयत्न करें। एक रेखा को छोटा करने का तरीका उसे मिटा देना नहीं है, बल्कि उसके पास उससे बड़ी रेखा खींच देना है। दूसरे की प्रगति को देख कर ईर्ष्या–द्वेष वश उसे मिटा देने का प्रयत्न करना निषेधात्मक एवं आत्मध्वंसक क्रिया है तथा उससे प्रेरणा लेकर उसकी अपेक्षा अधिक उन्नति करना एक स्वस्थ होड़ है। विकारों के रहने पर तो विश्व की समस्त सम्पदा, अतुल बल, महान् पद, अपूर्व यश तथा असीम विद्या पाकर भी अथवा दिन–रात केवल बाह्य पूजा–पाठ, भजन, यज्ञ, तप करके भी कदापि सुख नहीं हो सकता है। अतः मन की पवित्रता मानव में सुख एवं स्वास्थ्य की प्रथम आवश्यकता है। मन के पवित्र होने पर ही पूजा–पाठ सार्थक होते हैं।' **तीर्थं परं किम् ? हि मनो विशुद्धम्।** 'अपना पवित्र मन ही परम शान्तिदायक श्रेष्ठ तीर्थ है।

क्षीणताप्रद मोहादि दोषों को सद्‌विचारों द्वारा निरस्त करके, रिक्त मन को पोषक भावों से परिपूरित कर देना चाहिए। प्रभु से तथा जनता–जनार्दन से शुद्ध प्रेम करना सीखें। इनसे मन को

स्थायी बल मिलेगा। स्वार्थ छोड़कर परमार्थ की ओर बढ़ें, सङ्कीर्णता छोड़कर व्यापकता, उदारता, क्षमा, सहनशीलता, त्याग और सेवाभाव अपना लें। निःस्वार्थ सेवाभाव से समाज के साथ जुड़ने पर आप में बल एवं शान्ति का उदय हो जायेगा।

मन के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की ध्वनि जीवन–पथ में प्रकाश की भाँति सहायक होती है। पवित्र अन्तःकरण की ध्वनि की उपेक्षा करके विपरीत आचरण करने से मन निर्बल एवं दुःखी होता है। शुद्ध अन्तःकरण की ध्वनि ईश्वर की ही वाणी होती है। यदि मन किसी कर्म को बुरा कहता है, उसके करने से मन में अशान्ति होगी यद्यपि उससे क्षणिक सुख प्राप्त हो रहा हो। मन की अशान्ति से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव मन को बुरे प्रतीत होने वाले शब्दों को नहीं कहना चाहिए तथा मन को कुत्सित प्रतीत होने वाले कर्म को नहीं करना चाहिए। अपने सद्विचार के अनुरूप आचरण करने से अन्तःकरण उज्जवल होता है, मनोबल बढ़ता है। अतः शुद्ध, स्वस्थ एवं सुखी मन सुन्दर स्वास्थ्य का प्रथम रहस्य है।

आर्थिक अभाव अथवा किसी (शारीरिक) विवशता इत्यादि के कारण मन में दीनता न आने दें। दैन्यभाव दुर्बलता उत्पन्न करता है। मन की प्रफुल्लता, फक्कड़ता सर्व–विजयी होती है और उसका सम्बन्ध किसी बाह्य परिस्थिति, विवशता अथवा विषमता से नहीं होता है। मन को सदैव मस्त रखें।

" मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। "

मन ही मानव के बन्धन और मोक्ष, दुःख और सुख का कारण है।' **जितं जगत् केन ? मनो हि येन।** 'जिसने मन पर विजय प्राप्त कर ली, उसने संसार को जीत लिया। मन को सुखी रखने के लिये पुराने विकारों का निराकरण, यम–नियम के द्वारा नये दोषों का प्रवेश मन में न होने देने का प्रयत्न, उदारचेता होकर प्रभु–भक्ति एवं जन–सेवा के भाव का समावेश तथा प्रसन्न (मस्त) रहने का अभ्यास, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है।

प्रसन्न चित्त व्यक्ति के शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, बल, ओज तथा स्वस्थता स्थायी रूप में रहते हैं। चिन्ता आदि क्षीणता–दायक विचारों को छोड़कर कर्म करना सीखें। चिन्ता में चिता से अधिक दाहकत्व होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि हँसी–खुशी का जीवन शरीर को स्वस्थ रखता है। सोवियत वैज्ञानिक डा० पी०वी० सिमोनौफ का मत है कि भय, घृणा, क्रोध, चिन्ता आदि मनोवेग मनुष्य को सुस्त और निष्क्रिय बना देते हैं तथा उल्लास और मस्ती का भाव मनुष्य के सर्वतोमुखी विकास में विशेष सहायक होता है। मनोवेग शरीर क्रिया पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं। प्रभु के भरोसे के सहारे चिन्ता छोड़ी जा सकती है तथा मस्ती अपनायी जा सकती है। चिन्ता छोड़कर कर्म करना अपने में एक निराला सुख होता है।

विचार, वचन, कर्म की एकता होनी चाहिए अन्यथा मन दुर्बल बन जाता है। हम भले ही किसी दूसरे को धोखा दे दें, परन्तु अपने आपको धोखा नहीं दे सकते। मन, वचन, कर्म की एकता होने पर मन में तनाव भी उत्पन्न नहीं होता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

चित्तनिरोध के उपाय

श्री वैद्य रामदत्त शर्मा शास्त्री

किसी भाई का प्रश्न है कि चित्त बड़ा चंचल है और प्रमादी है, इसे रोकना बड़ा कठिन है। यद्यपि शास्त्रकारों ने इसके निरोध के अनेक उपाय बताये हैं। उन उपायों को पढ़ने–सुनने और समझने की चेष्टा भी की जाती है एवं उन बतलाये मार्गों के अनुसार साधना करने का यत्किंचित प्रयत्न किया जाता है, मन फिर भी स्थिर नहीं होता। अतः इसके निरोध का सुगम उपाय क्या है ?

उत्तर यह है– दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिए चित्त का निरोध आवश्यक है। श्रुति–स्मृति शास्त्रों में बतलाये हुए साधनों के अनुसार तत्पर होकर चेष्टा करने से इनका निरोध हो सकता है। किन्तु असल बात तो यह है कि साधक–गण इसके लिए यथेष्ट प्रयत्न तो करते नहीं, केवल सुगम उपाय पूछते रहते हैं। इसलिये प्रायः साधकों की यही शिकायत रहती है कि मन स्थिर नहीं होता। शास्त्रकारों ने चित्त–निरोध के जो अनेक उपाय बतलाये हैं, उनमें से किसी के लिए कोई सुगम उपाय पड़ता है तो किसी के लिए कोई। स्वभाव की विभिन्नता के लिए महर्षियों ने अधिकारी भेद से नाना विधि साधनों का उल्लेख किया है। अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार इनमें से जो–जो साधन मैं सुगम समझता हूँ, उन्हें बतलाने का प्रयत्न करता हूँ।

सर्व प्रथम ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि मन वश में हुए बिना उसका निरोध होना कठिन है और पवित्र हुए बिना मन का वश में होना कठिन है। इसलिए सर्व प्रथम मन को शुद्ध बनाना चाहिए। उसकी शुद्धि के लिए महात्माओं ने अथवा भगवान ने अनेक साधन बतलाये हैं। महर्षि पतंजलि जी ने सुखी पुरुषों से मित्रता, दुखियों पर दया, पुण्यात्माओं को देखकर हर्ष और पापियों से उदासीनता रखना चित्त या मन की शुद्धि का उपाय बतलाया है और मन के प्रसन्न होने से ही शुद्धि होती है, तब चित्त निरोध होता है।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख

पुण्यापुण्यविषयाणां भावना तश्चित्त प्रसादनम्।

–योग० द० 1/33

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अध्याय 5 श्लोक 11 में मन शुद्धि के लिए आसक्ति को त्याग कर कर्म करने की आज्ञा दी है। अन्य सभी–महात्माओं ने भी लगभग इसी प्रकार कहा है। सबका निचोड़ यही निकलता है कि सब ही के हित में रत रहकर निरभिमान एवं निस्वार्थ भाव से सबकी आत्मा को सुख पहुँचाना ही अन्तःकरण की शुद्धि का उत्तम उपाय है। वह हरि के नाम का स्मरण एवं कीर्तन भी मनः शुद्धि का सुगम उपाय है–

हरिर्हरंति पापानि, दुष्ट चित्तैरपि स्मृतः।

अनिच्छापि संस्पृष्टो, दहत्येव हि पावकः।।

– वृ० नारद० 1/11/100

बिना इच्छा के स्पर्श करने पर भी जिस प्रकार अग्नि निश्चय ही जला देती है, उसी प्रकार दुष्टचित्त वाले मनुष्यों द्वारा भी स्मरण किये हुए हरि पापों को हर लेते हैं। गीता में लिखा है:–

अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः, सम्यग्व्यवसितो हि सः।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति।।

– गीता 6/30–31

अर्थात् कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ निरन्तर मुझे भजता है, वह साधु ही माना जाने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है, इसलिए वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। उपर्युक्त साधनों से पापों का नाश हो जाने पर मन शुद्ध और स्वाधीन हो जाता है फिर एकाग्र और निरोध हो जाना तो अत्यन्त ही सहज है। इस प्रकार शुद्ध और स्वाधीन हुआ मन परमानंद प्राप्ति के योग्य बन जाता है। प्रथम यह समझ लेने की आवश्यकता है कि मन का स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने अनेक बातें बतलायी हैं।

महर्षि पतंजलि जी ने भी कहा है-

प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।

–योग० द० 1/6

अर्थात्- प्रमाण, विपर्यय (मिथ्या ज्ञान) विकल्प (कल्पना) निद्रा और स्मृति चित्त (मन) की ये पाँच वृत्तियाँ बतलायी हैं। इनके निरोध का नाम ही योग है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

किसी महात्मा ने चित्त की क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध ये पाँच अवस्थायें बतलायी हैं और किसी ने संकल्प को ही इसका स्वरूप कहा है।

अपने–अपने सिद्धान्तों के अनुसार सभी की मान्यता ठीक है। अतः सार रूप से यह कहा जा सकता है कि संकल्पों का आधार अर्थात् संकल्प जिसमें उत्पन्न होते हैं, उसका नाम मन है। संकल्पों का आधार होने के कारण भी मन संकल्प रूप भी कहा जा सकता है। अब विचारणीय विषय यह है कि संकल्पों का निरोध किस सहज उपाय से किया जा सकता है। किन्तु इससे भी पूर्व यह जान लेने की आवश्यकता है कि संकल्पों के बार–बार उठने से साधना के लिए रुचि न होने में प्रधान हेतु कौन से हैं ? इनके साथ ही साधना–काल में उपस्थित होने वाले विघ्नों को भी समझ लेना नितान्त आवश्यक है।

विघ्नों के विषय में महर्षि पतंजलिजी इस प्रकार लिखते हैं।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति,
भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित,

त्वानि चित्तविक्षेपास्ते ऽन्तरायाः।

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः

विक्षेपसहभुवः।

–योग ० 30/31

रोग, अकर्मण्यता, संशय, प्रमाद (व्यर्थ चेष्टा), अवैराग्य आलस्य का भाव, भ्रम चित्त–भूमि की अप्राप्ति, चित्त का विशेष समय तक स्थिर न रहना यह नव चित्त के विक्षेप हैं। दु:ख, क्षोभ, अंगों का फड़कना, श्वाँसों का आना–जाना यह सभी नव विक्षेपों के साथ रहते हैं। अन्य शास्त्रकारों का भी न्यूनाधिक रूप से प्रायः यही कहना है। इन सब विघ्नों में व्याधि, अकर्मण्यता, प्रमाद, आलस्य, आसक्ति, स्फुरण ये छः प्रधान हैं। और इनमें विशेष आलस्य और स्फुरण बाधक है। अन्तःकरण में अनेक संकल्पों के उत्पन्न होने में पूर्वार्जित संचित एवं प्रारब्ध कर्मों का संस्कार तथा बुरी आदत और विषयों की आसक्ति तथा साधन की ओर रुचि न होने में पूर्व कृत पाप कर्मों का समुदाय एवं संशय, भ्रम और अश्रद्धा ही प्रधान हेतु हैं।

आसक्ति के नाश के लिए इस संसार के अनित्य नाशवान और क्षण भंगुर सम्पूर्ण पदार्थों और विषय–भोगों में दोष और दुःखों का बार–बार विचार कर उन से वैराग्य एवं उनका यथो चित्त त्याग करना चाहिए। प्रारब्ध कर्म का क्षय तो प्रायः भोग से ही होता है। और संचित कर्मों का यानी सम्पूर्ण पापों का नाश निष्काम भाव से दुःखी मनुष्यों की सेवा तथा ईश्वर नाम जप से होता है। बुरी आदत, संशय, भ्रम और अश्रद्धा के नाश के लिए सत्पुरुषों का संग सत् शास्त्रों का विचार ही विशेष लाभ प्रद हैं।

मन निरोध के विषय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्णजी से पूछा था अर्जुन की शंका को स्वीकार कर यही उपदेश दिया कि मन चंचल और अस्थिर है तथापि अभ्यास और वैराग्य से वह स्थिर हो सकता है।

महर्षि पतंजलि का भी यही कथन है–

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अभ्यास और वैराग्य से मन का निरोध होता है। सांख्यकार महर्षि कपिलदेव ने भी अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध बतलाया है। अन्य शास्त्रकारों का भी यही सिद्धान्त है।

किसी भक्त ने कहा है–

मन फुरना से रहित कर, जौने विधि से होय।

चहै भक्ति चहै योग से, चहै ज्ञान से खोय।।

उपर्युक्त वचन से भी यह सिद्ध होता है कि अभ्यास और वैराग्य ही चित्तनिरोध के लिये उत्तम उपाय है। इसलिए विषयों से वैराग्य करके मन के निरोधार्थ कटिबद्ध होकर अभ्यास करना चाहिए। इस प्रसंग पर अभ्यास और वैराग्य का स्वरूप समझ लेने की आवश्यकता है। त्रिगुणात्मक संसार के विषय भोगों और समस्त पदार्थों में तृष्णा और आसक्ति के अभाव का नाम ही वैराग्य है। अभ्यास एक व्यापक शब्द है। उसकी व्याख्या विस्तृत है। यहाँ विस्तार न करके सारी बातें ही बतलायी जाती हैं। इस विषय में महर्षि पतंजलिजी का कहना है–

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

–योग० 1–13

अर्थात्– परमात्मा में स्थिति के लिए यत्न करने का नाम अभ्यास है।

स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़ भूमिः।

– योग० 1–14

यह अभ्यास दीर्घ काल तक आदर पूर्वक किया हुआ दृढ़ भूमि (स्थिति) वाला होता है। भगवान श्रीकृष्णजी का भी यह कहना है।

यतो यतो निश्चरति, मनश्चञ्चलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यै, तदात्ममेव वशं नयेत्।।

–गीता

स्थिर न रहने वाला चंचल मन जिस–जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उसे रोककर बार–बार परमात्मा में ही निरोध करें। समस्त विघ्नों के नाश एवं मन को स्थिरता के लिए सबसे उत्तम और सहज उपाय ईश्वर के नाम का जप और उसके स्वरूप का ही चिन्तन है। महर्षि पतंजलि जी का यही कथन है।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा।

–योग० 1–23

ईश्वर की भक्ति से ही चित्त की वृत्ति का निरोध होता है।

तस्य वाचकः प्रणवः।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तराया भावश्च।।

–योग० 1–27/29

अर्थात्– उस ईश्वर का नाम ओंकार है। उस ईश्वर के नाम का जप उसके स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए उससे समस्त विघ्नों का अभाव और आत्मा का साक्षात्कार भी हो जाता है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन के प्रति कहते हैं:–

अनन्य चेता सततं, यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभ पार्थ, नित्य युक्तस्य योगिनः।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझे स्मरण करता है, मुझमें युक्त हुए योगी के लिए सुलभ हूँ। इसलिए ईश्वर के नाम का जप और स्वरूप का चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

अभ्यास के विषय में और भी युक्तियाँ शास्त्रों में मिलती हैं। उनमें से किसी एक के अनुसार साधन करने पर मन स्थिर होना सम्भव है। उनमें से कुछ युक्तियाँ ये हैं।

मन जहाँ जाय वहाँ से हटाकर उसको अपने अधीन करके परमात्मा में लगाने की अपेक्षा करे। मन जहाँ जाय वहीं परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करना और भी सहज सुगम उपाय है। मन

को काबू में करने के लिए इन युक्तियों को काम में लाने की चेष्टा करनी चाहिए। ईश्वर सब जगह व्यापक है ही, अपनी समझ के अनुसार श्रद्धा और प्रेम से उस परमेश्वर का सब जगह चिन्तन करने से चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

भगवान् शिव अथवा विष्णु की अथवा अपने इष्टदेव की उसकी मूर्ति या चित्र को सम्मुख रखकर श्रद्धा और प्रेम से भगवान् के मुखारविन्द पर नेत्रों की वृत्ति को स्थिर–स्थापन करके अपने ऊपर भगवान् की अपार दया और प्रेम का अनुभव करता हुआ उस आनन्दमय परमेश्वर के मुख–कमल पर मन रूपी भ्रँमर को स्थिर–स्थापन करने से भी चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र होकर निरुद्ध हो सकती हैं।

प्रात:काल सूर्य के सम्मुख खड़े होकर नेत्र मूँद कर सूर्य की ओर देखने से एक महा प्रकाश–पुञ्ज सर्वज समभाव से प्रतीत होता है, उसको लक्ष्य करके उससे हजारों गुना अधिक एक प्रकाश का पुञ्ज आकाश की तरह सर्वत्र समान भाव से परिपूर्ण हो रहा है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है वही परमात्मा का तेजोमय स्वरूप है। इस प्रकार समझकर सम्पूर्ण संसार को भूलकर उस तेजोमय परमात्मा के स्वरूप में चित्त की वृत्तियाँ लगाने से भी चित्त स्थिर हो जाता है। ध्यान लगाने से भी चित्त में वैराग्य होकर चित्तवृत्तियों का निरोध हो सकता है। निरोध करने का भी एक सरल उपाय है।

महर्षि पतञ्जलिदेव ने भी कहा है–

वीतराग विषयं वा चित्तम्।

वीतराग पुरुषों के चिन्तन से चित्त स्थिर हो जाता है। हृदय–देश में एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी है, उस नाड़ी में परमानन्द विराजमान है। गीता में लिखा है–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टा:।

परमात्मा विज्ञानानन्द रूप है। इसलिए उस नाड़ी में चेतन और आनन्द की भावना करनी चाहिए। उस नाड़ी का शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों से सम्बन्ध है, इसलिए उसके बन्द हो जाने से सब नाड़ियाँ बन्द हो जाती हैं। उस नाड़ी की चाल साधारणतया एक मिनट में 75 या 80 बार समझी जाती है। उसी चाल पर हमारे हाथों की और मस्तक की नाड़ियाँ टकराती हैं। इसकी प्रत्येक चाल के साथ ॐ का जप करते हुए विज्ञानानन्दघन परमात्मा की भावना उस नाड़ी में की जावे तो चित्त की वृत्तियाँ स्थिर होकर परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

यह साधन कुछ कठिन अवश्य है, परन्तु शब्द रहित जहाँ विशेष बाधा देने वाले शब्द न सुनाई दें, ऐसे एकान्त स्थान में एकाकी रह कर प्रयत्न किया जाए तो सिद्ध हो सकता है।

विशोका वा ज्योतिष्मति।

–योग–दर्शन 1–36

शोक रहित प्रकाशमय चित्त की अवस्था विशेष भी स्थिर करती है। यह सुषुम्ना–नाड़ी में ध्यान लगाने से होती है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

साधना-काल में आने वाले विघ्न

अन्नू राम यादव, इलाहाबाद

वर्ष 1989 के महाकुम्भ प्रयाग, इलाहाबाद में प्रातः स्मरणीय सद्गुरु देव भगवान द्वारा दिये गये अन्तिम प्रवचन के कुछ अंश का उल्लेख करने का प्रयास किया जा रहा है। उस समय सद्गुरुदेव भगवान की अमृत वाणी का महत्व उतना समझ में नहीं आया था परन्तु आज जब उनके एक-एक शब्द पर विचार किया जाता है तो लगता है कि गुरुदेव का वह प्रवचन एक साधक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और अनेक समस्याओं का निदान करने वाला है।

श्री सद्गुरुदेव भगवान अपने प्रवचन में कहते हैं कि साधना-काल में एक साधक के समक्ष अनेक प्रकार के विघ्न आया करते हैं। इन विघ्नों के कारण उसकी साधना सुचारु रूप से नहीं चल पाती और कभी-कभी साधना – क्रम बीच में ही टूट जाता है। मुख्य रूप से ये विघ्न नौ प्रकार के होते हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. व्याधि – जब साधक अपनी साधना प्रारम्भ करता है तो उसके शरीर में प्रायः कोई न कोई रोग लग जाता है जिससे उसकी साधना में अन्तराय आ जाता है।

2. स्त्यान – स्त्यान का अर्थ है– लापरवाही। प्रायः चंचल मन ऐसा सोचता है कि चलो आज नहीं तो कल दो घन्टे जप कर लेंगे, सुबह नहीं तो शाम को ही बैठ लेंगे। ऐसा करते-करते समय बीतता चला जाता है और हम कुछ नहीं कर पाते।

3. संशय – संशय भी साधना में बहुत बड़ा विघ्न बन जाता है। साधक के मन में शंका होने लगती है– पता नहीं, गुरुदेव ने जो कहा है उसमें कितनी सत्यता है। गुरुदेव ने जो मंत्र दिया है वह शक्ति प्रदान करने वाला है कि नहीं है। आदि-आदि शंकाएँ साधक के मन में आने लगती हैं जिसके कारण उसकी साधना आगे नहीं बढ़ पाती।

4. प्रमाद – प्रमाद के तो कई अर्थ होते हैं उनमें से एक अर्थ है – अवहेलना। साधना-काल में साधक प्रायः अवहेलना करने लगता है जिससे उसकी साधना में निरन्तरता नहीं बन पाती।

5. आलस्य – यह एक ऐसा महारोग है जो अधिकांश लोगों के जीवन में आया करता है। गुरुदेव का आदेश है कि सुबह पाँच बजे से सात बजे तक जप करना है। ठंडक का दिन है रजाई में पड़े हैं। मन कहता है थोड़ा सो लेते हैं फिर बैठ लेंगे। आलस्य साधना में बहुत बड़ा विघ्न बन कर सामने आता है।

6. अविरति – अविरति का अर्थ है– वैराग्य का न होना। साधना काल में वैराग्य का न होना भी साधना को आगे बढ़ने नहीं देता।

7. भ्रान्ति दर्शन: – भ्रान्ति दर्शन का अर्थ है – जिनका ध्यान करने हम बैठे हैं, उनका दर्शन न होकर अनेकानेक अन्य दर्शन होने लगें।

8. अलब्धभूमिकत्व - इसका अर्थ है– ध्यान लगे ही नहीं।

9. अनवस्थिततत्व – इसका अर्थ है– ध्यान तो लगता है परन्तु ठहरता नहीं। थोड़ा सालगा, फिर हट गया।

इस प्रकार साधना काल में साधक के समक्ष ये नौ विघ्न आया करते हैं। इन सारे विघ्नों को दूर करने का उपाय जो गुरुदेव ने बताया वह अत्यन्त सहज और मार्मिक है। मैं समझता हूँ कि हम सबको इसे अपने दिल–दिमाग में बैठा लेना चाहिए और निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। गुरुदेव कहते हैं कि उपरोक्त सारे विघ्नों को दूर करने का एक मात्र उपाय है– " **एक तत्वाभ्यास** "। एक तत्वाभ्यास के संबंध में गुरुदेव के मुखारविन्द से निकले शब्द ज्यों के त्यों इस प्रकार हैं – " **मैं क्या कहूँ, मुझे कहने में संकोच हो रहा है। यदि साधक केवल मात्र अपने गुरुदेव का चिन्तन ही करता रहे तो एक तत्वाभ्यास हो जाता है।** " अर्थात् उपरोक्त सभी विघ्नों को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है– गुरुदेव का चिन्तन। गुरुदेव स्वयं अपने बारे में कहते हैं कि– " मैंने अपने जीवन में भली–भाँति समझ लिया है कि मेरे मन में जब भी कोई अन्तराय आया, उसी समय मैंने आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का चिन्तन आरम्भ कर दिया, तत्काल वे अन्तराय बिल्कुल–बिल्कुल समाप्त हो गये। " जब कोई साधक पत्र के माध्यम से अपनी समस्या गुरुदेव को बताता था तो सारे रोगों की एक दवा एवं सभी समस्याओं का एक ही निदान के रूप में गुरुदेव यही जबाव देते थे कि श्री प्रभुजी का चिन्तन एवं अधिक से अधिक गुरु मंत्र का जप किया करो–सब ठीक हो जायेगा।

गुरुदेव के चिन्तन मात्र से एक साधक अपनी साधना की अधिकतम् ऊँचाई तक पहुँच सकता है, इस संबंध में एक सच्ची एवं यथार्थ कथा का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

वाराणसी (काशी) के निकट एक संत हरिहर बाबा रहते थे। वहीं पास के एक गाँव में जगत राम नाम का एक अनपढ़ गँवार लड़का रहता था। वह अपने गाँव में गाय–भैंस आदि जानवर चराया करता था। न जाने किस प्रेरणा से एक दिन वह लड़का बाबा के पास आ गया। उसके पास इतनी बुद्धि नहीं थी कि उसे कुछ विशेष समझाया जा सके, लेकिन फिर भी उसे भगवान की भक्ति करने की लगन थी, पर भगवान को तो वह जानता नहीं था। सो उसने अपने गुरुदेव हरिहर बाबा को ही अपना भगवान मान लिया। बस, उसे बाबा की एक बात समझ में आ गई थी कि इंसान जो सोचता है, एक दिन वही बन जाता है। बाबा ने कहा बेटा! जो तुम चाहते हो, सो सोचा करो। बड़ी आसान और सहज बात थी, यह उस बालक के मन में जम गई। सरल चित्त जगत राम को तो अपने गुरु में भगवान को पाना था।

बस, इसी लगन के साथ वह अपनी सोच में तल्लीन हो गया। आसन, प्राणायाम एवं शास्त्र का तो उसे कुछ ज्ञान था नहीं। बस, एक बात मन में थी– जो चाहिए उसे सोचो। जो सोचोगे वैसा अपनेआप मिलेगा। हरिहर बाबा के इस कथन को उसने अपने जीवन का महामंत्र

मान लिया। उसे जब भी समय मिलता, गंगा किनारे बैठ कर हरिहर बाबा की छवि का ध्यान करते हुए मन ही मन उनकी पूजा किया करता। उसके पास न कोई साधन होता और न सामान। मन ही मन अपने गुरुदेव की भाव–पूजा किया करता। अपने इस काम में उसे न दिन दीखता न रात।

चिलचिलाती धूप हो या फिर कड़ाके की ठंड, सुबह का उजाला हो या शाम का अंधेरा या फिर घनी काली रात, उसे बस अपने गुरुदेव की भाव–पूजा भाती थी। इस पूजा में वह अपने सारे भाव उड़ेल देता था। ऐसी पूजा करते हुए कई वर्ष बीत गये। एक दिन जब वह अपनी भाव–पूजा में लीन था, तो उसे ऐसा लगा, जैसे हरिहर बाबा सचमुच ही उसके पास खड़े हुए हों। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे हरिहर बाबा के शरीर के सारे अंग प्रकाश के बने हों। बड़ी भक्ति से वह मन ही मन अपने गुरुदेव को निहारता रहा। इस प्रक्रिया में कितना समय बीत गया उसे याद नहीं। याद तो उसे तब आई, जब उसे अनुभव हुआ कि गुरुदेव का सम्पूर्ण प्रकाश शरीर एकाएक बिखर कर उसके रोम–रोम में समा गया।

सम्पूर्ण प्रकाश न केवल उसमें लीन हुआ, बल्कि लीन होकर उसके ही अन्दर घनीभूत होने लगा। गुरुगीता के 89 वें श्लोक में इस प्रक्रिया का वर्णन आया है। यह सारा वाकिया कुछ ही समय में घटित हो गया। जगत राम के हृदय–मध्य में अंगुष्ठ ज्योति प्रकाशित हो उठी और सुनाई दी हरिहर बाबा चिर–परिचित वाणी– **" बेटा जगत ! अब से तू इसी ज्योति के बारे में सोचा कर। इसी को निहार, इसी को देख और इसी की भक्ति कर। "** अब जगत राम का दिन–रात अंगुष्ठ ज्योति को निहारने में बीतने लगा। सालों साल यही प्रक्रिया चलती रही। उसे होश तब आया, जब फिर से एक रात्रि को दृश्य बदला।

अबकी बार जगत राम ने यह अनुभव किया कि वही हृदय जयोति अचानक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गई। ऐसा लगा कि सृष्टि का कण–कण उसी से प्रकाशित है। इस अनूठी भाव–समाधि में वह बेसुध बना रहा। उसका सम्पूर्ण अन्तःकरण दिव्य प्रकाश से आलोकित हो गया। जब उसे होश आया, तब उसने देखा कि उसके गुरु हरिहर बाबा उसके सामने खड़े हैं और उसे प्यार से निहार रहे हैं। उनकी आँखों में अपूर्व वात्सल्य था। इसी वात्सल्य से सने स्वरों में वे उससे बोले – **" बेटा ! जो गुरु है– वही आत्मा है, जो आत्मा है– वही परमात्मा है। "** जो इन तीनों को एक मानता है, वही सचमुच ज्ञानी है। हरिहर बाबा की यह वाणी साधकों के लिए एक धरोहर है। केवल गुरुदेव के चिन्तन मात्र से जगत राम अध्यात्म की उच्चतम स्थिति को प्राप्त हो गया। आइए, आज हम सब सच्चे मन से यह दृढ़ संकल्प करें कि उपरोक्त एक तत्वाभ्यास के निमित्त कही गई गुरुदेव भगवान की अमृतवाणी का निरन्तर चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासन करेंगे।

सादर जय गुरुदेव !

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

तपोधन महामुनि पतंजलि

श्री गौतम

भारतीय संस्कृति परम्परा और ज्ञान–विज्ञान के जो आधार हैं, उनमें पतंजलि का स्थान ऊँचा है। व्यास, पाणिनि आदि की तरह पतंजलि को भी आरम्भ में नमन किया जाता है। योगदर्शन के प्रणेता, व्याकरण महाभाष्य के कर्ता और आयुर्वेद की चरक–परम्परा के जनक के रूप में चित्त, वाणी और शरीर के मल को दूर करने वाले मुनिप्रवर के लिए भर्तृहरि ने अपनी वाक्यपदीय के प्रारम्भ में लिखा है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि।।

योग से चित्त का, पद (व्याकरण) से वाणी का और वैद्यक से शरीर का मल जिसने दूर किया उस मुनिश्रेष्ठ पतंजलि को मैं अंजलिबद्ध होकर नमस्कार करता हूँ।

भारत में स्थूल इतिहास लेखन का रिवाज नहीं रहा है। इसलिए पतंजलि की स्थूल जानकारी खास मिलती नहीं। उनके ग्रंथों से आख्यायिकाओं से कुछ जानकारी बताई जाती है, जिसकी सत्यासत्यता के विषय में निर्णय करना बड़ा कठिन है।

पतंजलि गोनर्द ग्राम के रहने वाले थे और उनकी माता का नाम गोणिका था। उनके पिता के नाम की जानकारी नहीं है। यह गोनर्द कहाँ है ? कहना कठिन है, इस बारे में विद्वानों में, मतभेद है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह स्थान उत्तर भारत में कहीं होना चाहिए, क्योंकि कात्यायन मुनि को पतंजलि ने 'यह दाक्षिणात्य है' ऐसा कहा है।

ईसा के पहले दूसरी शती में पतंजलि का समय माना जाता है। मौर्य सम्राट बृहद्रथ का वध करने वाले पुष्यमित्र शुंग के जमाने में पतंजलि थे, दोनों में मित्रभाव भी था, ऐसा महाभाष्य पर से सूचित होता है।

पतंजलि के जन्म के विषय में किंवदन्ति है कि एक बार श्रीविष्णु शेषशय्या पर लेटे थे। उस समय श्री शंकर जी का ताडवनृत्य शुरु हुआ। उन्हें नींद लगी नहीं थी इसलिए श्रीविष्णु का ध्यान उस ओर गया। उस नृत्य को देखने से भगवान् विष्णु को इतना अधिक आनन्द हुआ कि वह आनन्द उनकी देह में समाता नहीं था, तो उनकी देह बढ़ने लगी। देह का यह भार शेष को असह्य होने लगा। और वे अपने सहस्त्र मुखों से फूत्कार करने लगे। शेष की हालत देख लक्ष्मी जी घबड़ा गयीं। उन्होंने विष्णु को हिलाकर जागृत किया। विष्णु के जागृत होते ही उनकी देह यथावत् हो गई और शेष ने आराम की सांस ली। शेष ने विष्णु भगवान से पूछा, " आज आपने मेरी परीक्षा लेने को सोचा था क्या? " तब भगवान ने शिव के ताडवनृत्य की कलात्मक श्रेष्ठता उन्हें समझाई। शेष ने कहा, ' मैं भी वह नृत्य देखना चाहता हूँ। ' भगवान ने कहा, ' फिर तो तुम एक बार पृथ्वी पर जन्म लो। तब तुम्हें वह नृत्य देखने को मिलेगा। ' तदनुसार शेष अवतार लेने

लिकते। गोणिका पुत्र प्राप्ति के लिए तप कर रही थी। उसे ही शेष ने मातृ रूप में स्वीकार किया। वह जब अंजलि भर सूर्य को अर्घ्य देने लगी तब शेष सूक्ष्म रूप लेकर उसकी अंजलि में आ गये। गोणिका द्वारा अंजलि का पानी नीचे डालते ही वे बालक रूप में उसके सामने खड़े हो गये। गोणिका ने उसे पुत्र मानकर उठा लिया और कहा, " तुम्हारा मेरी अंजलि से पतन हुआ है इसलिए तुम्हारा नाम पतंजलि ' रखती हूँ।"

पतंजलि ने बाल्यावस्था में ही सारा अध्ययन पूर्ण करके तप करना शुरु किया। तब शिवजी ने उसे चिदंबर क्षेत्र में अपना तांडव–नृत्य दिखाया और उसे आदेश दिया कि व्याकरण शास्त्र पर लिखो। उसी चिदंबर क्षेत्र में पतंजलि ने पाणिनि के सूत्रों पर और कात्यायन के वार्तिकों पर विस्तृत भाष्य लिखा। उसे ही महाभाष्य कहते हैं।

महाभाष्य की कीर्ति सुनकर हजारों विद्यार्थी आने लगा, तो पतंजलि परदे के पीछे बैठकर सहस्त्र शिष्यों को अपने सहस्त्र मुखों से एक ही साथ सिखाने लगे। विद्यार्थियों को लगा कि ये एक साथ हजारों को कैसे सिखा सकते हैं ? तो उन्होंने परदा हटाया। तब दर्शन हुआ कि सहस्त्र मुख शेष के रूप में पतंजलि उन्हें सिखा रहे हैं। लेकिन शेष का तेज इतना उग्र था कि वे उसे तेज से भस्म हो गये। केवल एक शिष्य बचा, जो उस समय पानी लेने बाहर गया हुआ था। पतंजलि ने उसे पूरा भाष्य सिखाया। " लायक शिष्यों को अब तुम सिखाओ। " ऐसा कहकर चिदंबर से चलकर वे गोनर्द में आये। वहाँ अपनी माता का दर्शन कर वे अपने शेष में लीन हो गये।

महामुनि पतंजलि के तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं –

1. व्याकरण महाभाष्य– पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्रपाठ और कात्यायन के वार्तिकों पर यह भाष्य लिखा है। संस्कृत के गद्य साहित्य में यह अद्वितीय गद्य माना जाता है। श्री शंकराचार्य से लेकर अनेक आचार्यों ने अनेक सूत्रग्रन्थों पर भाष्य लिखे हैं, लेकिन वे सब 'भाष्य' कहे गये। पतंजलि का भाष्य **'महाभाष्य'** कहा जाता है। महाभाष्य का अर्थ ही **'पानअलभाष्य'** होता है। इस भाष्य पर भर्तृहरि, कैयर आदि की कई टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। पाणिनि को पतंजलि ने ही सर्व प्रथम **'भगवान पाणिनि'** कहा है।

व्याकरण महाभाष्य गम्भीर और सुस्पष्ट अर्थ प्रकट करने वाले छोटे–छोटे प्रासादिक वाक्यों का गद्य–ग्रन्थ है। **'कर्ता'** की व्याख्या करते हुए पतंजलि कहते हैं, **'स्वतन्त्रः कर्ता।'** इस सूत्र का उद्धरण विनोबाजी कई बार देते हैं। तत्त्वज्ञानी लोग भी इस भाष्य–ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं। व्याकरण जैसा नीरस और शुष्क विषय भी उन्होंने रसमय बना दिया है। पतंजलि के कारण व्याकरण–शास्त्र को भी दर्शन–शास्त्र की बराबरी में बैठने का सौभाग्य मिला है। शब्द–ब्रह्म ही सृष्टि का आदि कारण है ऐसा पतंजलि ने माना है।

2. योगसूत्र– पतंजलि के ग्रन्थों में यह सर्वाधिक प्रसिद्ध है। चार पाद और 195 सूत्रों में सम्पूर्ण योग–दर्शन ग्रंथित किया गया है। मानस–शास्त्र का इतना सांगोपांग और सूक्ष्मतम विवेचन और कहीं भी देखने को नहीं मिलता। प्रथम समाधि पाद में ' **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः** ' (चित्त की वृत्तियों का निरोध यानी योग) से आरम्भ कर समाधि–शास्त्र की रूपरेखा बतायी है।

दूसरे साधना पाद में आत्म–साक्षात्कार के लिए अष्टांगयोग साधन क्यों करना चाहिए, इनकी मीमांसा करके यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन पाँच अंगों का विचार किया है। तीसरे विभूति पाद में धारणा, ध्यान, समाधि इन तीन अंतरंग साधनों का विवेचन कर उस निमित्त से अनेकविध ज्ञान–सिद्धि व क्रियासिद्धि कैसे प्राप्त होती है, इसका विस्तृत विवरण दिया है और अन्त में सर्वश्रेष्ठ विवेकजन्य ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, यह बता कर उसका स्वरूप समझाकर " **सत्वपुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्।** " (चित्त और आत्मा की साम्य–शुद्धि कैवल्य है) ऐसा उपसंहार किया है।

चौथे कैवल्य पाद में सिद्धि के निमित्त खड़े हुए कुछ मुद्दों का विवेचन करके जीवमुक्ति का विस्तार से वर्णन किया है और उसका पर्यवसान विदेहमुक्ति में कैसे होता है यह बताकर ' **स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तेः** ' ऐसा कह कर समाप्त किया है।

योग–सूत्रों की महिमा अपार है। दर्शन शास्त्री उसे एक स्वतन्त्र–दर्शन ही मानते हैं।

3. चरक-संहिता का प्रतिसंस्करण– वैद्यक–शास्त्र का ग्रन्थ '**चरक-संहिता**' का पतंजलि ने प्रतिसंस्करण किया है, ऐसा माना जाता है।

" **पातञ्जलिवार्तिक** " नाम के एक ग्रन्थ का भी जिक्र मिलता है। कृष्ण–यजुर्वेदीय चरक शाखा का पतंजलि ने आयुर्वेद की मूल आत्रेय–संहिता का संस्करण किया, इसलिए उसे '**चरक-संहिता**' नाम मिला ऐसा माना जाता है।

और भी कुछ ग्रन्थ पतञलि के नाम पर चलते हैं, लेकिन उनके बारे में निर्णय करना कठिन है।

ऐस महामुनि को हम भी " **प्रांजलिरानतोऽस्मि** " कहें।

✱ *क्रोध मूर्खता से शुरू होता है और पश्चात्ताप पर समाप्त होता है* – **पैथागोरस**

✱ *चोरी का जन्म संचय से होता है।* – **विनोबा**

✱ *ब्रह्मचर्यमय जीवन परम पुरुषार्थमय जीवन है।* – ***उड़िया बाबरा***

✱ कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों का एक्य ही श्रेष्ट पुरुषार्थ है। – **योगी अरविन्द**

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

आत्मज्ञान और उसकी उपलब्धि

श्री केशव उपाध्याय, वाराणसी

आपके, अपने, और प्राणीमात्र के भाग्य–विधाता, अकारण दयालु श्री प्रभु जी की कृपा से इस जटिल विषय पर, कुछ सरल विचार लिखकर, ' आत्मज्ञान क्या है ?, इस तथ्य को समझने और समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि, लेख की त्रुटियों को क्षमा करने की कृपा की जाए। इस विषय को समझने के लिये सर्व प्रथम यदि श्री मद् भागवत गीता का प्रसंग लिया जाए तो उसमें कालचक्र, जगचक्र और युगचक्र को एक साथ चलाने वाले जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने महात्मा अर्जुन को निमित्त बनाकर सभी आध्यात्मिक प्राणियों को उपदेश देते हुये कहा कि :–

न जायते म्रियते वा, कदाचिन्नायं, भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

– 2/20

अर्थात् यह आत्मा न तो किसी काल में जन्मता है, और न मरता है। यह आत्मा होकर फिर होने वाला नहीं है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, तथा शरीर के नाश होने पर भी इस आत्मा का नाश नहीं होता है। आगे वे कहते हैं–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।

– 2/33

अच्छेधोऽयमदाह्योऽयम्, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः, स्थाणुर–चलोऽयं सनातनः।।

– 2/24

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्, अविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं, नानुशोचितुमर्हसि।।

– 2/25

अर्थात् इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं। इसको आग नहीं जला सकती है। इसको जल नहीं गीला कर सकते हैं। और वायु नहीं सुखा सकती है। यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है, तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य सर्वव्यापक अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों का अविषय यह आत्मा अचिन्त्य अर्थात् मन का अविषय और यह आत्मा विकार रहित अर्थात न बदलने वाला कहा

गया है। इसलिये हे अर्जुन ! इस आत्मा को ऐसा जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है।

इस प्रकार योगेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्र ने अर्जुन को स्पष्ट रुप से यह बता दिया कि आत्मा क्या है। इसी आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करना 'आत्म ज्ञान' है। इसी क्रम में भगवान श्रीकृष्णचन्द्र महात्मा अर्जुन को आगे समझाते हुए कहते हैं कि:-

" यह ज्ञान (आत्म ज्ञान) सब विद्याओं का राजा तथा सब गोपनीयों का राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फल वाला, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है। अर्थात् यह राजविद्या है और इससे बढ़कर तथा गुप्त दुनिया में और कोई बात नहीं है।"

इसी ज्ञान की बात को लक्ष्य करके स्वामी विवेकानन्द ने उपदेश एवं आदेश दिया था कि जो विद्या 'आत्म ज्ञान' को प्राप्त नहीं करा सकती वह विद्या किसी काम की नहीं।

इस विषय पर प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों ने अनेक मत प्रकट किये हैं। कुछ के अनुसार आत्मज्ञान परमात्म ज्ञान की शुरूआत है, तो कुछ के अनुसार अपने विषय में पूर्ण जानकारी हासिल करना आत्मज्ञान है। परन्तु यदि व्यापक दृष्टि कोण से देखा जाए तो मनुष्य मात्र नमक का पुतला है, और परमेश्वर पानी का समुद्र। यदि मनुष्य परमेश्वर की खोज करना आरम्भ करेगा तो कुछ गहराई तक जाने पर वह उससे अभिन्न हो जावेगा।

इस जगत का प्रत्येक आस्तिक और आध्यात्मिक प्राणी अनेकानेक उपायों और साधनों से यह ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। परन्तु अपनी जिन्दगी के अन्तिम पल तक कितने हीं प्राणी इसे नहीं जान पाते। आखिर इसका क्या कारण है ? इसका कारण है, सही रास्ते की जानकारी न होना। इस प्रसंग में एक घटना याद आ रही है, जिसका वर्णन करना अनुचित न होगा। किसी आदमी ने अपने मित्र से सुन रखा था कि समुद्र में दरियायी घोड़ा होता है। एक दिन एकान्त स्थान में जाकर उसने एक कमंडल समुद्र का पानी लिया और एक हफ्ते बाद उसमें देखा कि अभी घोड़ा इसमें आया कि नहीं ? उसने सोचा कि जब कमंडल में समुद्र का ही पानी रखा गया है, और समुद्र के पानी में दरियायी घोड़ाअवश्य ही रहता है, तो एक न एक दिन हमारे कमंडल में दरियायी घोड़ा अवश्य ही धीरे-धीरे पैदा होगा। इस प्रकार एक वर्ष तक उसने प्रतीक्षा की बाद में जब उसका मित्र आया तो उसको अपने मित्र की अज्ञानता पर हँसी आयी एवं उसने वस्तु स्थिति, उसे भली प्रकार समझायी। आज यही हालत हमारे देश के अनेक प्राणियों की है।

रहस्यमय बात तो यह है कि यह ज्ञान प्रत्येक आदमी के अन्दर ही विराजमान है, परन्तु वह उसका साक्षात्कार नहीं कर सकता। कारण यह है कि उस ज्ञान को देखने वाली अन्तरचक्षु को खोलने की क्रिया केवल मात्र तत्वदर्शी आध्यात्मिक प्राणियों, सिद्ध पुरुषों और योगीजनों को ही ज्ञात है, यह एक आध्यात्मिक क्रिया है जिसका प्रयोग सिद्ध पुरुष अपने शिष्यों पर अनुग्रह करके किया है। इसे प्रवचन द्वारा या लेख द्वारा न तो किसी को समझाया जा सकता है और न ही कोई समझ ही सकता है। यह तथ्य किसी विरले भाग्यवान शिष्य को तब समझ में आता है जब उसके समर्थ गुरुदेव अपनी कृपा द्वारा उसके अन्तर-चक्षु खोल देते हैं। इस आत्मज्ञान का रहस्य सांसारिक प्राणी की समझ में कब और कैसे आता है, और सिद्ध पुरुष कैसे समझाते हैं, इस प्रसंग को स्पष्ट करने वाली एक काल्पनिक घटना का वर्णन इस प्रकार किया जाता है।

(क्रमशः)

विचार-कण

दुःखियों के दुःख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़, भगवान तुम्हें सफलता देंगे ही। मैंने अपने हृदय में इस भार को और मस्तिक में इस विचार को रख कर बारह वर्ष तक भ्रमण किया। मैं तथाकथित बड़े और धनवान व्यक्तियों के दरवाजों पर गया। वेदना-भरा हृदय लेकर और संसार का आधा भाग पार कर, सहायता प्राप्त करने के लिए मैं इस देश (अमेरिका) में आया। ईश्वर महान् है। जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस भूखण्ड में शीत से भूख से भले ही मर जाऊँ, पर हे तरुणों, मैं तुम्हारे लिए एक वसीयत छोड़े जाता हूँ, और वह है यह सहानभूति- गरीबों, अज्ञानियों और दुःखियों की सेवा के लिए प्राणपण से चेष्टा।

⌘ ⌘ ⌘

मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुयें वृथा तथा क्षणभंगुर हैं, पर वे ही जीवित हैं, दूसरों के लिए जीते हैं, शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

⌘ ⌘ ⌘

मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आँसू पोंछने या आनाथों को रोटी देने में असमर्थ है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________

____

____

□□□□□□

स मुक्तिपदमर्हति !

मोह एव महामृत्युर्ममुक्षोर्वपुरादिषु।
मोहो विनिर्जितोयेन स मुक्तिपदमर्हति।।

शरीरादि में मोह रखना ही मुमुक्षु की बड़ी भारी मौत है। जिसने मोह को जीत लिया है वही मुक्तिपद का अधिकारी बनता है।

संस्थापक:— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा